कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था

परम पूज्य डॉ.बिन्दा परांजपे के चरण कमलों में
सादर समर्पित

कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था

धनञ्जय कुमार

MPASVO
M.PUBLICATION

MPASVO
M.PUBLICATION

मनीषा प्रकाशन एवं शोध विवेक संस्था ,बी 32/16 ए.-फ्लैट 2/1 गोपाल कुञ्ज नरिया,लंका
वाराणसी

मनीषा प्रकाशन एवं शोध विवेक संस्था की स्थापना का उ-ेश्य विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकों,अप्रकाशित शोधों मौलिक कृतियों,कहानियों उपन्यासों,पाठ्यपुस्तकों,पाण्डुलिपियों का प्रकाशन,साथ ही शोध के नवीन बिन्दुओं का अध्ययन करना है। मनीषा प्रकाशन द्वारअन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका " आन्वीक्षिकी " का प्रकाशन किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत आप अपने शोध निबन्धा को ससन्दर्भ प्रकाशित करा सकते हैं।

Mpasvo India

अवनीश शुक्ला ,9/2बी-4,लिडिल रोड जार्ज टाउन,इलाहाबाद,उ.प्र.(भारत)
मो. 9450308530,9721959152,9415614090,
डॉ.मनीषा शुक्ला,सम्पादिका " आन्वीक्षिकी " मो. 9935784387
बी 32/16 ए.-फ्लैट 2/1 गोपाल कुञ्ज नरिया,लंका वाराणसी,उ.प्र. भारत 221005

कार्यालय : वाराणसी,जौनपुर, इलाहाबाद

MPASVO अर्थात् मनीषा प्रकाशन एवं शोध विवेक संस्था। यह प्रकाशन एवं शोध के लिए स्थापित पंजीकृत,भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त स्ववित्तपोषित संस्था है। इसकी पत्रावली संख्या V-34654,रजि.533/2007-2008 है।

© धनञ्जय कुमार
प्रथम संस्करण 2009
मूल्य-100/-मात्र

इस पुस्तक के अन्तर्गत सभी अधिकार लेखक एवं प्रकाशक के अधीन हैं। इस पुस्तक के किसी भी भाग को किसी भी रूप में प्रयोग करना,फोटोकॉपी करना अथवा किसी भी जानकारी को बिना सन्दर्भ दिये प्रयोग करना दण्डनीय होगा।

International Standard Book Number
ISBN-13 : 978-81-905742-8-0
ISBN-10 : 819057428-0

टंकण : एडोब पेजमेकर,ए.पी.एस.प्रियंका रोमन 14 /16.8,Times New Roman 12/14.4
द्वारा : महेश्वर शुक्ल,लंका वाराणसी
प्रकाशन : मनीषा प्रकाशन एवं शोध विवेक संस्था
बी 32/16 ए.-फ्लैट 2/1 गोपाल कुञ्ज नरिया,लंका वाराणसी
सम्पर्क : मो. 9935784387

आभार

स्वतंत्र भारत की नई शिक्षा नीति (1986)में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि शिक्षा का उ्देश्य हमारे राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत की पहचान को बनाए रखना है। प्रगतिशील विचारों को अपनाना है,अन्ध विश्वासों को दूर करना है और यही उ्देश्य इतिहास के अध्ययन का भी है।

इसलिए इतिहास से एम.फिल. के दौरान लघुशोध प्रबन्ध के लिए मैने भारतीय इतिहास के इस काल खण्ड को चुना,जिसे कुषाण काल के नाम से जाना जाता है। इस काल की अर्थव्यवस्था और उसमें लगे हुए भारतीय लोगों की सामाजिक और धार्मिक मान्यताएँ नि:सन्देह प्रगतिशील थी और व्यापारिक गतिविधियाँ सागर पार तक फैली हुई थी। इसलिए भारतीय जनमानस में यह धार्मिक बाध्यता थोंपना कि सागर से अन्तरण करना धर्म विरोधी है और उससे जाति व धर्म का पतन हो जाएगा। शायद यही वजह रही कि गुप्तयुगीन स्वर्ण काल के बाद धीरे-धीरे भारतीय व्यापारियों की सामुद्रिक गतिविधियों में कमी आती गई। इस दृष्टिकोण से कुषाण काल एक महत्वपूर्ण एवं गौरवशाली अध्याय प्रस्तुत करता है और जब मैने यही विषय लघुशोध प्रबन्ध के लिए चुना,तो इसे पूर्ण करने के लिए अपने सम्पूर्ण कार्य क्षमता के साथ मैं इस उत्तरदायित्व का निर्वहन किया।

इस शोध कार्य को सम्पन्न करने के लिए मुझे अपने पूज्य गुरूवर प्रो.परमानन्द सिंह जी से अद्वितीय मार्ग दर्शन मिला। इस कार्य में मुझे श्री भूपेश डे जी से भी अति महत्वपूर्ण सहयोग मिला। चूँकि मेरे इस लघुशोध प्रबन्ध में एम.फिल. के दौरान कुछ कमियाँ रह गयीं थीं। उन कमियों को दूर करने के लिए मुझे पुन: इस लघुशोध प्रबन्ध में कुछ विस्तार (संशोधन)की आवश्यकता महसूस हुई। मेरे इस कार्य में महत्वपूर्ण सहयोग डॉ.बिंदा परांजपे(रीडर,इतिहास विभाग,बी.एच.यू)का है। जिसके म्ेनजर मैने इस पर पुन: कार्य किया और उन कमियों को दूर करके पाठको के समझ पुस्तक के रुप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। फिर भी यदि कहीं मेरी अल्पबुद्धि से कोई त्रुटि रह गई हो तो उसे विचारशील पुरुष क्षमा करेंगे। अत: मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक सामान्य पाठकों एवं अनुसंधानकर्त्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगी ,जिससे यह पुस्तक अपने प्रयास में सफल हो।

अन्त में मैं अपने प्रकाशक मनीषा प्रकाशन एवं शोध विवेक संस्था वाराणसी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ,जिन्होंने मुझे इस पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए प्रेरणा दी और इसमें सहयोग देने वाले अन्य सभी सहयोगी बन्धुओं को भी आभार प्रकट करता हूँ, जिनके प्रयास के बिना यह कठिन कार्य इतनी कुशलता से सम्पन्न न हो पाता।

धनञ्जय कुमार

पुत्र श्री चन्द्रदेव एवं श्रीमती दुर्गावती

ग्राम- भदसामनोपुर,पो.-कोपागंज, जि.-मऊ

उ.प्र.,भारत

मो.9616745644

मकर संक्रान्ति पर्व

2009

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
आभार		
भूमिका		**iii-xvi**
विषय परिचय		**xvii-xx**
प्रथम अध्याय	: कुषाणकालीन समाज एवं व्यापार तथा व्यापारिक मार्ग	1-9
द्वितीय अध्याय	: परिवहन के साधन, विनिमय का माध्यम तथा बाट-माप एवं तौल	10-15
तृतीय अध्याय	: व्यापारिक नियम और व्यापारिक संगठन	16-20
चतुर्थ अध्याय	: करारोपण और आयात-निर्यात	21-25
पंचम् अध्याय	: कृषि, दुर्भिक्ष-सिंचाई, वन-उपवन, पशुपालन और शिल्प-उद्योग	26-30
षष्ठम् अध्याय	: सिक्का	31-34
उपसंहार	:	35-36
परिशिष्ट	:	
1.	कुषाण काल का संक्षिप्त इतिहास	37-49
2.	कुषाणों की अर्थव्यवस्था का एक सामान्य परिचय	50-55
3.	ऐतिहासिक सिल्क रुट चौवालीस साल बाद पुनः खुला	56-57
	सन्दर्भ ग्रंथ :	58-63
	मानचित्र एवं सिक्के :	64-78

✷

भूमिका

अर्थव्यवस्था में शासन की आय, जनसाधारण की आय और तत्सम्बन्धी क्रिया-कलाप आदि सभी शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त जनता के कृषि, शिल्प, आवागमन, व्यापार(व्यापार से जुड़ी विभिन्न मौद्रिक, सामाजिक और धार्मिक इकाईयाँ) तथा उनके बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध आदि भी आर्थिक क्रिया-कलापों में शामिल होते हैं।

प्राचीन भारतीय वांगमय में एक आदर्श भारतीय की हिन्दू जीवन पद्धति में चार पुरूषार्थों [1] की प्राप्ति को ही जीवन का परम ध्येय बताया गया है। उनमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरूषार्थ मनुष्य को बड़ी आसानी से मिल सकते हैं। यदि वह अर्थ नामक पुरूषार्थ में सफल होता है।

नि:सन्देह अर्थ और अर्थव्यवस्था मानव समाज की आधारशीला है। धर्म और समाज की मान्यताएँ भी इसी अर्थव्यवस्था पर आश्रित रहती हैं और प्राचीन भारत के सुखी और सहज जीवन में अर्थव्यवस्था का बहुत बड़ा हाथ है।

प्राचीन भारतीय समाज भी आज की ही भाँति कृषि प्रधान समाज था और उसी प्राचीन भारतीय समाज के अध्ययन का विषय जब कुषाण काल को बनाया गया, तो वहाँ भी हमें यही दृश्य दिखाई पड़ता है। जीवन-यापन के लिए जनसाधारण का बहुत बड़ा हाथ पशुपालन एवं कृषि से जुड़ा था, लेकिन महत्वपूर्ण वैश्य व्यापार में केन्द्रित रहने लगे। यह वर्ग व्यापार से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था और अपने व्यापार का विकास भी करता था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अस्तित्व था और विदेशी व्यापारियों को भारतीय शासकों द्वारा संरक्षण भी दिया जाता था। कुषाणकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था में करीब-करीब वे ही सारी गतिविधियाँ शामिल हैं, जो ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में हुआ करती थीं।

इस समय विदेशी जातियाँ भारत की ओर बढ़ रहीं थीं। इनमें से कुछ लोग मध्य एशिया, उत्तर-पश्चिमी चीन इत्यादि जगहों से आ रहे थे। इनके आने से समुद्र से घिरे दक्षिण के क्षेत्रीय तटों से व्यापारिक प्रक्रिया शुरू हो गई। यद्यपि समुद्री व्यापार के

---

1. अच्युतानन्द घिल्डियाल-प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएँ, वाराणसी ,1973, पृ.सं.72

प्रारम्भिक उदाहरण ईसा पूर्व छठी शताब्दी के साहित्यों से होने लगता है,फिर भी विदेशियों के अब्रजन के कारण और आक्रमणकारी रूप में आने के कारण स्थलीय मार्ग का व्यापार मन्द पड़ गया होगा। जब 45 ई.में सिकंदरिया के यूनानी नाविक हिप्पालस [1] (Hippalus)ने मानसूनी हवाओं का पता लगा लिया,तो सामुद्रिक व्यापार में एक क्रांति- सी आ गयी। मानसूनी हवाओं के ज्ञान का प्रथम लाभ मिस्र और भारत के बीच व्यापार को मिला। इस काल में शकों और सातवाहन शासकों ने अपनी राज्यव्यवस्था के द्वारा शांति और सम्पन्नता के युग को लाने के लिए महानतम कार्य किया,जिसके परिणामस्वरूप रोम के साथ भी उनका घनिष्ठ व्यापारिक संबंध हुआ और जब मानसून की खोज हो गयी,तो उसके कुछ ही समय बाद कुषाण साम्राज्य का चरमोत्कर्ष हुआ। अर्थव्यवस्था इतनी अच्छी होने लगी कि कुषाण शासकों ने सोने की मुद्राएँ [2]ढ़लवानी शुरू कर दी।

व्यापार की विकासशील अवस्था के लिए देश के आंतरिक और बाह्य व्यापारिक मार्ग विशेष रूप से महत्वपूर्ण थे। प्राचीन काल से ही आर्थिक सम्पर्क के साधन सड़क थे और यही व्यापार मार्ग के रुप में विकसित हो गए। जल मार्ग के विकास के कारण भारतीय व्यापारी भी सीधे समुद्री यात्रा करने लगे। पहले समुद्री यात्रा तटीय क्षेत्रों के साथ होती थी,सीधे जल मार्गो का पता नहीं था। मानसून की खोज से पहले भारतीय व्यापारी तटीय समुद्र से होते हुए ताम्रलिप्ति (पश्चिम बंगाल के मिदनाजपुर जिला में)से जावा,सुमात्रा,बोर्निया आदि पूर्वी देशों को जाते थे। मिस्र और अरब देश में भी भारतीय व्यापारी जाया करते थे। रोम से भारत का विशेष व्यापारिक सम्बन्ध था।

रोम के सिक्के भारत के पश्चिमी समुद्र तट अरिकामेडु [3] नामक प्राचीन स्थल से प्राप्त हुए और भारतीय व्यापारियों का सम्बन्ध तिब्बत,चीन , अफगानिस्तान आदि देशों से भी था। कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के लिए अन्तर्देशीय मार्ग मौर्य काल से ही मौजूद थे और कुषाण काल में उसका भरपूर उपयोग किया गया। मौर्य काल में पाटलिपुत्र से नेपाल तक,कौशाम्बी से उज्जैनी तक और मथुरा से बैक्ट्रीया तक मार्ग बने हुए थे। कौटिल्य ने भारत के दो मुख्य स्थल मार्ग बताये-एक उत्तरापथ तथा

---

1. जयनारायण पाण्डेय-पुरातत्व विमर्श,इलाहाबाद,2000 ,पृ.सं.580
2. आनंद शंकर सिंह-प्राचीन भारतीय मुद्राएँ, इलाहाबाद,1995,पृ.सं.69
3. रामनिहोर पाण्डेय-दक्षिण भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, इलाहाबाद,2000, पृ.सं.34

दूसरा दक्षिणापथ ।[1] कौटिल्य के अनुसार प्राचीन भारत में जलमार्ग जोखिमयुक्त था और जलमार्गों का उपयोग हर मौसम में संभव नहीं था।

भारतीय व्यापार की दृष्टि से बैक्ट्रिया महत्वपूर्ण व्यापारिक स्थल था,क्योंकि यहीं से व्यापार के योग्य वस्तुओं को विदेशों को भेजा जाता था। कंधार प्राचीन मार्गों का महत्वपूर्ण मिलन स्थल था। फारस की खाड़ी और लाल सागर के माध्यम से रोम और भारत की निकटता बढ़ गयी। प्राचीन भारत में यातायात के साधनों की प्राविधिक गुणात्मक और वर्तमान यातायात की व्यवस्था से तुलना विशेष उल्लेखनीय है। प्रारम्भ में पशु एवं मनुष्य को भारवाही के रूप में प्रयोग में लाया जाता था और धीरे-धीरे पहिए वाली गाड़ियों में प्राविधि का प्रयोग किया जाने लगा तथा बैलगाड़ी तक भारवाहन और यातायत के साधन बने । रथों का विवरण तो ऋग्वेद से ही मिलता है। कुषाणयुगीन रथों और पशुओं द्वारा चालित मालवाही गाड़ियों का प्रयोग भी होता रहा।

जल परिवहन के लिए लट्ठों से बने प्लेटफार्म का प्रयोग किया जाता था। नाव का अस्तित्व पाषाण काल में ही आ गया और कुषाण काल तक आते-आते नाव बनाने की कला अपने विकास के उन्नत अवस्था को प्राप्त हो गयी। कुषाण काल में विशेष रूप से कनिष्क के समय भारत और रोम से बहुत अधिक व्यापार होता था। आयत में प्रमुख रूप से सोना-चांदी आता था और निर्यात में मोती,हाथी दांत,गरम मसाले,मलमल और रेशमी वस्त्र का प्रमुख स्थान था। व्यापार स्थल और जल दोनों मार्गों से होता था। रोम से इतना सोना यहाँ पहुँचता था कि प्लिनी [2] ने दु:खी होकर रोम निवासियों की आलोचना की कि रोम के लोग विलासिता की सामग्री खरीदने में भारत को बहुत अधिक सोना देते हैं।

कुषाण काल में प्राचीन व्यापार के वाणिज्यिक व्यवस्था के लिए प्रचलित व्यापारिक संगठनों का भी अस्तित्व था। कराधान की प्रक्रिया मूल रूप से वही बनी रही,जो अर्थशास्त्र और मनुस्मृति में वर्णित है। विदेशी व्यापार के साक्ष्य प्रचुर होते हुए भी प्राप्तता में अत्यन्त दुरूह हैं। चरकसंहिता,सुश्रुतसंहिता,जातक इत्यादि में जो वर्णन मिलते हैं,उन्हीं के आधार पर सूची प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। जिसमें कुषाणकालीन कृषि और उपज से लेकर व्यापारिक क्रिया-कलापों तक का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। तथ्यों के समीक्षात्मक विश्लेषण के लिए कुषाणकालीन ग्रंथों के अलावा परवर्ती

---

1. पुस्तक के प्रथम अध्याय में व्यापारिक मार्ग देखें।
2. जयनारायण पाण्डेय-पुरातत्व विमर्श,इलाहाबाद,2000,पृ.सं.584

ग्रंथों का भी आश्रय लिया गया है,जिसमें कुमारसंभव,मेघदूत,याज्ञवल्क्यस्मृति, वृहस्पतिस्मृति,कथासारित्यसागर,राजतरंगिणी,पुराण आदि शामिल हैं।

कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था पर अनेक विद्वानों ने ग्रंथ लिखे हैं,इनमें डॉ.बी.एन.पुरी द्वारा लिखित 'इंण्डिया इन द टाइम ऑफ पातंजलि ',' इंण्डिया अन्डर द कुशानाज ', ' सेण्ट्रल एशियन दि कुषाण पीरियड ' , डॉ.बी.एन.मुखर्जी द्वारा लिखित ' जीनियलोजी एण्ड क्रोनोलोजी ऑफ दी कुषाणाज ',' दि कुषाणाज एण्ड दि डकन ', 'डिसइण्ट्रेग्रेशन ऑफ कुषाण एम्पायर ',' दि इकोनोमिक फैक्टर्स इन कुषाण हिस्ट्री ' डॉ.भास्कर चट्टोपाध्याय द्वारा लिखित 'दि एज ऑफ दी कुषाणाज,कुषाण एण्ड स्टेट एण्ड इण्डियन सोसाइटी ' डॉ. डी.सी सरकार द्वारा लिखित ' इस्टर्न बाउण्ड्री आफ दि कुषाण एम्पायर, ' सम प्राब्लम्स आफ कुषाण राजपूत हिस्ट्री ',डॉ.ए.एल.बाशम द्वारा लिखित ' दि डेट ऑफ कनिष्क ',डॉ.श्रीराम गोयल द्वारा लिखित ' कनिष्क की तिथि ' डॉ.बलदेव द्वारा लिखित ' दि अर्ली कुषाणाज ',डॉ.जी.आर.शर्मा द्वारा लिखित ' कुषाण स्टडीज ',डॉ.कामेश्वर प्रसाद द्वारा लिखित ' सिटिज क्राफ्ट्स एण्ड कामर्स अन्डर दि कुषाणाज ',डॉ.हरिश्चन्द्र शर्मा द्वारा लिखित ' भारत का आर्थिक विकास ', डॉ.ए.पी.गौड़ द्वारा लिखित ' भारत का आर्थिक विकास ', डॉ. ओम प्रकाश द्वारा लिखित ' प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास ' आदि विशष उल्लेखनीय हैं। कुछ व्यापारिक क्रिया-कलापों के संबंध में जानकारी के लिए डॉ. बी सी. लाल , डॉ. आर.एन.मेहता,डॉ.के.डी.बाजपेयी,डॉ.एच.चक्रवर्ती,डॉ.मोतीचन्द्र आदि के कार्यों का भी सामग्री हेतु उपयोग किया गया है।

साहित्यिक स्रोतों के अन्तर्गत अनेक साहित्यकारों के विविध ग्रन्थों का अध्ययन भी किया गया है,जिनमें अश्वघोष,वसुमित्र,नागार्जुन,चरक,पार्श्व,संघरक्ष तथा माठर आदि प्रमुख हैं। विदेशी लेखकों में चीनी इतिहासकार सूमा-ची-यन और यात्री फाहियान,व्हेनसांग, अल्बरूनी के विवरण प्रस्तुत पुस्तक में यथास्थान ग्रहित किये गये हैं।

अभिलेखों एवं मुद्रा के सन्दर्भ में डॉ.श्रीराम गोयल की ' प्राचीन भारत की मुद्रायें ',डॉ.वासुदेव उपाध्याय की ' प्राचीन भारत की मुद्रायें ',डॉ.राजवंत राय और डॉ.प्रदीप राय की प्राचीन भारत की मुद्रायें और डॉ.आनन्द शंकर सिंह की ' प्राचीन भारत की मुद्रायें ' आदि प्रमुख हैं। सक्षेप में मेरा प्रयास रहा है कि पुस्तक में स्थापित तथ्यों की तुलनात्मक आधार पर विभिन्न स्रोतों से पुष्टि हो सके। इस प्रकार स्रोतों की

विविधता की ओर मेरा यथासम्भव ध्यान रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में कुल छ: अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में कुषाणकालीन समाज-व्यापार तथा व्यापारिक मार्ग का उल्लेख किया गया है। इस समय वर्ण व्यवस्था इस प्रकार जुड़ा हुआ था कि हिन्दू धर्म में प्रवेश करना शास्त्रीय ढंग से कठिन था। चारों वर्ण के कर्त्तव्य निर्धारित थे और समस्त सामाजिक गतिविधियों का नियंत्रण स्मृतियों पर आधारित था। महात्मा बुद्ध ने कहा था कि वर्णक्रम में क्षत्रिय सबसे ऊपर हैं,फिर ब्राह्मण,वैश्य और शूद्र। जिसका परिणाम आगे चलकर यह हुआ कि यूनानियों,शकों और कुषाणों ने अपनी सत्ता स्थापित की। चूँकि ये शासक वर्ग के लोग थे, इसलिए इन्होनें बौद्ध मत के माध्यम से भारतीय हिन्दू समाज में अपनी विशिष्ट स्थिति प्राप्त कर ली। यह प्रवृत्ति गुप्त काल में भी दिखाई देती है। पेरिप्लस से व्यापार के लिए व्यापारिक मार्गों का विवरण मिलता है। इथोपिया [1] से हाथीदांत और सोना यहाँ आता था और वह भारतीय मलमल के लिए बाजार भी था। जहाँ आज कल जौडन स्थित है,वहीं पर पेट्रा नामक नगर पश्चिमी एशियाई मार्गों से लाल सागर के मार्गों को जोड़ता था। वास्तव में अरब में अनेक तटीय नगर इस प्रकार के मार्गों से जुड़े हुए थे।

द्वितीय अध्याय में परिवहन के साधन,विनिमय का माध्यम तथा बाट- माप एवं तौल का विवरण दिया गया है। मौर्यों ने अपना स्वयं का जहाज रखा था। जिसका उपयोग व्यापारी एवं यात्री किराया देकर करते थे। मेगस्थनीज भी कहता है कि जहाज बनाने वाले मौर्य सरकार के वेतनभोगी कर्मचारी थे जो सौदागरों अथवा व्यापारियों को किराये पर जहाज उपलब्ध कराते थे।[2] ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि बैलों का उपयोग गाड़ियों को खींचने के लिए किया जाता था। कौटिल्य के तीन प्रकार की गाड़ियों के उल्लेख से ऋग्वेद के इस मत को समर्थन मिलता है (यह अनुमान लगाया जाता है) कि व्यापार में परिवहन की यह व्यवस्था कुषाण काल तक आंशिक परिवर्तन के साथ चल रही थी। धीरे-धीरे लोग स्वर्ण एवं रजत मुद्राओं को मूल्यवान वस्तुओं के विनिमय के माध्यम के रूप में अपनाने लगे। साथ ही साथ तांबे के सिक्के भी साधारण व्यापारिक विनिमय के लिए मुद्रा के रूप में स्थान प्राप्त कर चुके थे। सम्भवत: बाट राज्य नियंत्रण में निर्मित होते थे तथा दुकान में बिकते थे। कौटिल्य [3] ने विभिन्न प्रकार के बाट एवं माप

---

1. पुस्तक के प्रथम अध्याय में व्यापार देखें।
2. पुस्तक के द्वितीय अध्याय में परिवहन के साधन देखें।
3. पुस्तक के द्वितीय अध्याय में बाट एवं माप देखें।

की सूची भी प्रस्तुत की है। ऐसा अनुमान है कि यही प्रणाली कुषाण काल तक भी जारी रही होगी।

तृतीय अध्याय में व्यापारिक नियम और व्यापारिक संगठन का उल्लेख है। उपलब्ध साक्ष्यों से स्पष्ट है कि राजा अपने देश के व्यापार की रक्षा हेतु सन्नद्ध रहता था तथा व्यापारियों से यथासम्भव राजकीय कोष में दान स्वरूप कुछ राशि लेता रहता था। इसके लिए वस्तुओं के ढुलाई के नियम,विदेश में व्यापार करने की विधि,जलमार्ग से व्यापार करने के नियम एवं शर्तों,तटीय व्यापार के नियम हेतु विधान और मूल्य निर्धारण आदि प्रमुख नियम थे। इसके अतिरिक्त ऐसा प्रतीत होता है कि व्यापारिक संगठनों का वही रूप कुषाण काल तक आगे बढ़ता आया जैसा कि मौर्य काल में दिखाई पड़ा ,परन्तु कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ होने के कारण उसमें श्रेणियों की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही।

चौथे अध्याय में करारोपण और आयात-निर्यात का विवरण है। कुषाण काल में स्पष्ट रूप से समझा जाता था कि अति कर लोगों को गरीबी की ओर ले जाएगी और उनकी कर दान क्षमता भी कम होगी। करारोपण की कला बत्तख को उस प्रकार नोचने में निहित है,जिससे कम से कम तकलीफ में अधिक से अधिक पंख एकत्र किये जा सके। अत: कुषाणकालीन राजस्व व्यवस्था में सीमा के अन्दर ही करारोपण का लक्ष्य रखा गया था। कुषाण काल में सोने की आपूर्ति के लिए मुख्य एशियाई स्रोत साइवेरिया था। ईसा काल के आरम्भ में मूंगे का व्यापार भूमध्यसागर तथा भारत के बीच हुआ था। इसका आयात पेरिप्लस [1] के अनुसार बारबेरिकम तथा बैरीगाजा को होता था। रोम के बहुत से सिक्के भारत में कालीमिर्च के व्यापार के महत्व के बारे में साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। चरक और सुश्रुत के चिकित्सकीय शोधों में इसका उल्लेख औषधि के रूप में बार-बार किया गया है। रोमवासियों द्वारा दालचीनी का उपयोग ज्यादा किया जाता था।

पाँचवे अध्याय में कृषि,दुर्भिक्ष-सिंचाई,वन-उपवन,पशुपालन और शिल्प-उद्योग का विवरण है। कुषाण काल में कृषि की वही परम्परा दिखाई देती है,जो ईसा पूर्व 600 से 300 ई.तक वाद गति से चलती रही। चरकसंहिता [2] में पन्द्रह प्रकार के चावल का उल्लेख है। इसमें चावल की पाँच घटिया किस्मों का भी उल्लेख है। अनाज, दाल,

---

1. पुस्तक के चौथे अध्याय में आयात देखें।

2. चरकसंहिता, 27,7-8

फल, मसाले वही हैं, जो मौर्य काल में दिखाई पड़ते हैं। कौटिल्य [1] ने लिखा है कि दुर्भिक्ष के समय राजा को भू-राजस्व माफ कर देना चाहिए। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस काल में जो दुर्भिक्ष पड़ते थे वह मुगल या ब्रिटिश काल के दुर्भिक्ष से अलग थे, क्योंकि मुगल काल में जो दुर्भिक्ष पड़े उनका प्रमुख कारण जनसंख्या की अधिकता एवं बाढ़ आदि थे। जबकि कुषाण काल में दुर्भिक्ष वर्षा न होने की स्थिति में हुए अर्थात् कुषाणकालीन प्रशासन का संबंध अधिक मानवीय था। सिंचाई के लिए महावग्ग और चुल्लवग्ग से ज्ञात होता है कि जल अभियन्ताओं ने किस प्रकार नई कार्य योजना प्रचलित की। बड़े नगरों में वन-उपवन आमोद-प्रमोद और आध्यात्मिक शांति के उपयोग में आते थे(श्रावस्ती के जेतवन आदि)। मेगस्थनीज कहता है कि हाथी और घोड़े पालने का एकाधिकार राजा को था। ऐसा अनुमान है कि कुषाण काल में भी ऐसी ही परिपाटी का ख्याल रखा गया होगा। बाह्य व्यापार के साथ-साथ आंतरिक व्यापार के लिए शिल्प तथा उद्योग-धंधे भी प्रगति पर थे। विभिन्न प्रकार के शिल्पों का सम्यक् विकास हुआ।

छठे अध्याय में कुषाणकालीन भारत में व्यापार एवं वाणिज्य के क्षेत्र में सिक्कों का नियमित रूप से प्रचलन हुआ। कुषाणों के पास स्वर्ण का भारी भण्डार था, जिसे उन्होंने मध्य एशिया के अल्ताई पहाड़ों एवं रोम से प्राप्त किया था। भारत में भी रोम के स्वर्ण सिक्के मिलते हैं। स्वर्ण सिक्के का प्रारम्भ विम कडफिसेस के काल से हुआ तथा कनिष्क के समय तक आते-आते भारी मात्रा में स्वर्ण मुद्राओं का निर्माण होने लगा। कुषाणों ने तांबे के सिक्के भी प्रचलित करवाये थे। ऐसा लगता है कि सामान्य व्यवहार में इन्हीं का प्रयोग किया जाता था, जबकि विशेष लेन-देन स्वर्ण सिक्कों में होता होगा। कनिष्क का शासनकाल आर्थिक समृद्धि एवं सम्पन्नता का काल था। डॉ. आर.एस.शर्मा जैसे कुछ आधुनिक विद्वान आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से कुषाण काल को ही प्राचीन भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग मानते हैं।[2] कालान्तर में गुप्त शासकों ने इन्हीं के अनुकरण पर सिक्के चलवाये थे।

इस पुस्तक में अर्थिक मान्यताओं के गहन अध्ययन के साथ-साथ कई अन्य पहलुओं को भी विवेचन की परिधि में लाने का प्रयास किया गया, जिनसे कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के बारे में वैज्ञानिक रूप से दिशानुसंधान संभव हो। अंत में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था में व्यापार एवं वाणिज्य की साधन

---

1. अर्थशास्त्र, 2,1

2. के.सी.श्रीवास्तव- प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, इलाहाबाद, 2001, पृ.सं. 371

सम्पन्नता ने अपना अस्तित्व इसी प्रकार महत्वपूर्ण बनाये रखा,जितना कि आज के व्यापार जगत का महत्व है।

कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था की पृष्ठभूमि में मौर्य साम्राज्य का समृद्ध आधारभूत ढांचा खड़ा हुआ था और मौर्य साम्राज्य ईसा पूर्व छठीं शताब्दी के नगरीकरण से लाभान्वित हो रहा था। इस प्रकार कुषाण काल में व्यापारिक गतिविधियाँ और व्यापारिक मार्ग तो थे ही,जो पहले से चले आ रहे थे। इसलिए इस काल को समुचित रूप से जानने के लिए इससे पहले के स्रोत उपयोगी हैं। कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था में जो नया तथ्य जुड़ा,वह था पश्चिमोत्तर भाग में राजनीतिक प्रभुत्व की स्थापना। जो अशोक के समय सौहार्द क्षेत्र में आते थे,अब वे प्रभुत्व क्षेत्र में आ गये । जिससे अब प्राचीन रेशम मार्ग [1] पर प्रभाव स्थापित हो गया। जिसके कारण कराधान और आयात-निर्यात में भी वृद्धि हुई और 45-46 ई. में हिप्पालस ने जब मानसून की खोज कर ली,तो व्यापारिक क्षेत्रों में एक उछाल-सा आ गया।

कुषाण सभ्यता के पृष्ठभूमि में हड़प्पा संस्कृति के बहुसंख्यक अवशेषों की भी गणना होनी चाहिए। यह प्रथम नगरीय सभ्यता के सूत्रपात का युग था। यहाँ से अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे उन बस्तियों के साथ गंगा के मैदान की ओर आगे बढ़ने लगी,जो इन इलाकों में 1500 ईसा पूर्व के पूर्व भारतीय आर्यों के प्रवर्जन के फलस्वरूप विकसित होने लगी। अब उत्तर-पश्चिमी भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में कुछ नई विशेषताओं का समावेश हुआ। उपमहाद्वीप के इस क्षेत्र में हिन्दूकुश पर्वत क्षेत्रों से सम्पर्क बना रहा और पश्चिमी भारत में फारस की खाड़ी और लाल सागर के पश्चिमी सामुद्रिक प्रदेशों से अपना सम्पर्क कायम रखा। भूरे रंग के बर्तनों के स्थल गंगा घाटी के पश्चिमी भाग में पाए गए, जो 1100 से 500 ईसा पूर्व के बीच के हैं और लौह प्रयोगता संस्कृति ने लोहे के आधार पर अपनी प्राचीनता 800 ईसा पूर्व (स्वीकृत तिथि)से पहले ही सिद्ध करती है। भूरे बर्तनों वाले स्थल तांबे के प्रयोग से परिचित लगते हैं,वे कृषक समुदाय का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं,जिन्हें भूरे रंग का ज्ञान था। इसलिए शायद यह आर्य संस्कृति के केन्द्र थे। यहाँ से जो साक्ष्य पाये गये,वे साधारण तौर पर वैदिक स्रोतों में दिए गए आर्य संस्कृति के विवरण से मेल खाती हैं। भारत के उत्तर भाग के साथ-साथ दक्षिण भाग में महापाषाण संस्कृति भी फलीभूत हो रही थी,जो 500 ईसा पूर्व से लेकर 100 ई.तक चलती रही।

---

1. जयनारायण पाण्डेय-पुरातत्व विमर्श,इलाहाबाद,2000,पृ.सं. 588

नृवंशीय अध्ययनों के फलस्वरुप भारत में छः मुख्य प्रजातियों का पता चला। इनमे सबसे प्राचीन निग्रेटो थे, उसके बाद प्रोटोआस्टेलाइड, मंगोलाइड, भूमध्यसागरीय और आर्य आदि थे। भारत की जनसंख्या के आधारभूत अंग प्रोटोआस्टेलाइड थे और उनकी भाषा आज भी मुंडा बोली के रूप में कुछ तत्वों के साथ जीवित है। भारत में कुषाण खानाबदोश की भांति आये थे और उन्होंने यहाँ पर अपने शासन सत्ता के साथ अधिकार जमा लिया। कनिष्क के काल तक कुषाण शासकों का चरमोत्कर्ष हो जाता है और कुषाण शासक यहीं के लोगों से घुल-मिल जाते हैं। इस प्रकार यह पृष्ठभूमि कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के विकसित होने तक भारतीय इतिहास की रही।

परिकल्पना कारणों की व्याख्या में सहायक होती है। क्रोचे और कालिंगवुड ने यह कहा कि परिकल्पना ऐतिहासिक ज्ञान का मूल स्रोत है। इसी को भारतीय दर्शन में अनुमान कहा गया है, किन्तु अनुमान बहुत सटीक नहीं हुआ करते। फिर भी संभावनात्मक निष्कर्ष तो निकाले ही जाते हैं। परिकल्पना का अर्थ है चारो ओर एक सामान्य अनुमान। इसलिए जब अनुमान चारो ओर से प्रभावित हो और वह अध्ययन का विषय हो, तो उसे ही हम परिकल्पना कह लेते हैं। इससे शोधकर्त्ता इधर-उधर नहीं भटकता।

परिकल्पना सिद्धान्त और अनुसंधान के बीच की कड़ी है, जो अतिरिक्त ज्ञान की खोज में सहायक होती हैं और अनुसंधान यदि वैज्ञानिक है, तो उसका अंतिम लक्ष्य सत्य की खोज करना होता है। लेकिन वहाँ भी परिकल्पना सत्य की खोज में सहायक होती है और इतिहास में भी यह सत्य की खोज में सहायक है। समाजशास्त्री लुंडवर्ग, वुडे, हार्ट, पी.वी.यंग इत्यादि सभी ने परिकल्पना की परिभाषा दी। उनका तात्पर्य यही है कि परिकल्पना किसी विषय से सम्बन्धित एक सामान्य अनुमान है, जिसके सन्दर्भ में सम्पूर्ण अध्ययन किया जाता है। परिकल्पना से निष्कर्षों का सत्यापन होता है और जब परिकल्पना सत्य हो जाती है, तो इसे एक निश्चित सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है।

परिकल्पना स्पष्ट होनी चाहिए। उसके द्वारा किसी विचार की सत्यता की परीक्षा हो सके। परिकल्पना अध्ययन विषय के किसी विशेष पक्ष से ही संबंधित हो और वह किसी पहले प्रस्तुत किए गए सिद्धान्त से संबंधित हो। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि परिकल्पना के निर्माण से पहले ही अध्ययन विषय में संबंधित साहित्य व ज्ञान को समझ लिया जाये। परिकल्पना का सबसे बड़ा स्रोत स्वयं अनुसंधानकर्त्ता की सूझ-बूझ हो। इतिहास में यह बात प्रमाणित है कि वैज्ञानिकों ने अपने अनुभव से ही उपयोगी

परिकल्पनाओं का निर्माण किया।

जब एक समाज विशेष की संस्कृति के अनुसंधान पर परिकल्पना का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़े। इसके साथ-साथ व्यक्तिगत अनुभव का भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए इतिहास जहाँ तक विज्ञान है, वहाँ तक उसका अध्ययन वैज्ञानिक है। जिससे परिकल्पना का महत्व अधिक हो जाता है, लेकिन यह भी सच है कि परिकल्पना का स्रोत एकमेव नहीं माना जा सकता।

प्रस्तुत पुस्तक में परिकल्पना से संबंधित अर्थ और परिभाषाओं को ध्यान में रखा गया है और कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था में परिकल्पना के सारे उपादानों का प्रयोग भी किया गया है। जैसे कि यदि कृषि और खनन तथा धातु पदार्थो से सम्बन्धित क्रिया-कलाप नि:सन्देह मौर्य व शुंग काल से होते हुए कुषाण काल तक पहुँची होगी। कुषाण युग की अलग कलात्मक अभिव्यक्ति में जो भी उच्चता-निम्नता प्रतिमान स्थापित हुए, उनके मूल में ठीक इससे पहले की कला और कलाकार अवश्य रहे होगें। इसलिए जब कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था की बात पुस्तक हेतु आयी तो एक सामान्य सी परिकल्पना या अनुमान, ज्ञात स्रोतों में प्रस्तुत की गयी।

कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के बारे में परिकल्पना का आधार स्रोत तत्कालीन बौद्ध लेखकों की रचनाओं में मिलता है और नि:सन्देह उसका स्वरुप मौर्य-सातवाहन युग में भी देखा गया और उसमें बहुत अधिक समानता उत्तर वैदिक काल से लगाई जा सकती है। अश्वघोष, वसुमित्र, नागार्जुन, चरक इत्यादि के जीवनी से संबंधित साहित्य में, विदेशी चीनी यात्रियों के विवरण में और रोमन सिक्कों में ये बातें प्रयासपूर्ण तरीकों से देखकर संतुलित की गयी कि इनसे अर्थव्यवस्था में कितना प्रकाश पड़ेगा।

भारत में कुषाणों की सत्ता कुजुल कड़फिसेस से मानी जाती है और कनिष्क इस वंश का सबसे महान शासक था। ईसा की प्रथम शताब्दी में जो कुछ भी व्यापारिक लेन-देन तथा आर्थिक जगत से संबंधित ऋण और बैकिंग संस्थाओं से संबंधित तथ्य भिन्न-भिन्न पुस्तकों में बिखरे हुए थे, उनको यथास्थान महत्व दिया गया है। चीनी इतिहासकार सूमा-ची-यन के विवरण से ज्ञात है कि कुजुल कड़फिसेस ने कबीले का संगठन किया और वह भारतीय उपमहाद्वीपों में भी घुस आया और यहाँ कब्जा जमा लिया, किंतु ईसा की पहली शताब्दी के मध्य में ही 80 वर्ष की आयु में कुजुल की मृत्यु हो गई। कुजुल के उत्तराधिकारी विम कड़फिसेस ने स्वर्ण सिक्के जारी किए थे। कनिष्क का राज्यारोहण 78 ई. से 144 ई.के बीच के समय में माना जाता है। कुषाणों के शासनकाल में चौथी

बौद्ध संगीति आयोजित हुई और बौद्ध प्रचारक चीन तक जाने लगे। कुषाणों के समय जब उत्तर-पश्चिम के इलाकों में अधिकार हो गया, तो प्रसिद्ध रेशम मार्ग से चीनी व्यापार के कारण कुषाणों की सत्ता ने काफी आर्थिक समृद्धि अर्जित कर ली। शिल्प और उद्योग विकसित होने लगे और मौर्य काल में जो शिल्प उद्योग थे, वे पूर्ण हो गये। मुद्रा विनिमय, शिल्प-उद्योग, व्यापार-वाणिज्य, भूमि-व्यवस्था इत्यादि पुस्तक के विषय हैं और उसमें उपलब्ध जानकारियों का भरपूर प्रयोग किया गया है। अत: प्रस्तुत पुस्तक परिकल्पना के धरातल में भी अपने समकालीनों में अद्वितीय सिद्ध होगा।

कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के लिए वैज्ञानिक शोध पद्धति का अवलम्बन प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। कार्ल बेकर के शब्दों में उन्हीं तथ्यों का चयन करना, उन्हीं प्रतिमानों को पाने का प्रयास करना, जिसके लिए ऐतिहासिक शोधकर्त्ता का समाज निर्देशित करता है और वर्डहिंग का यह कथन है कि शोध का अभिप्राय समाज द्वारा निर्देशित प्रतिमानों की खोज ही नहीं कुछ और भी है ,इन दोनों सूक्ष्म बातों को ध्यान में रखा गया। रेनियर, एच.सी.हॉकेट आदि विद्वानों का अभिप्राय यही है कि अतीत की घटनाओं के सम्बन्ध में नयी सूचना और विचारों को प्रस्तुत किया जाय।

शोध कार्य में एक क्रमबद्ध क्रियाशीलता होती है और इसे रेनियर [1] के आधार पर तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पुस्तक में मेरे द्वारा उन्हीं तीन पद्धतियों का पालन किया गया है। शोध में पहला कार्य होता है, अतीतकालीन घटना के संबंध में नवीन तथ्यों की खोज। दूसरा उपलब्ध तथ्यों की नवीन व्याख्या, यह कार्य थोड़ा जटिल है। इनमें पूर्व विस्थापित विद्वानों की मान्यताओं को तर्क की कसौटी पर खण्डित किया जाता है। पुस्तक में मैनें शोध की इस पद्धति पर भी पूर्ण रूप से ध्यान दिया है। शोध प्रक्रिया के तीसरे चरण में शोधकर्त्ता एक सामान्य नियम अथवा सिद्धान्त के माध्यम से अतीत की घटनाओं का निरूपण और उसके व्यावहारिक स्वरूप की व्याख्या करता है। इस दृष्टिकोण का भी पुस्तक में उपयोग किया गया है।

शोध पद्धति में और संपूर्ण शोध प्रक्रिया में ऐतिहासिक स्रोत के रुप में संदर्भ ग्रंथ, पुरातत्व, पुरालेख(Epigraphy)मुद्राशास्त्र (Numismatics)को यथासम्भव उपयोग में लाया गया है। प्रश्नावली, अखबारों में प्रकाशित शोधपूर्ण निबंध, लोकगीत, लोकोक्तियाँ इत्यादि जो भी यथासम्भव ऐतिहासिक स्रोत हो सकते थे, उन सभी को ध्यान में रखकर

1. झारखण्डचौबे-इतिहासदर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2001, पृ.सं.223

कठोर परिश्रम किया गया है।

शोध की अंतिम परिणति लेखन कार्य में होती है और तब एक शोध प्रबन्ध की रचना हो जाती है। शोध में कुछ विशिष्ट कार्य होते हैं जैसे वास्तविक तथ्यों की प्राप्ति,साक्ष्यों की प्रस्तुति,तथ्यों की व्याख्या,उसका स्पष्टीकरण,उसकी आलोचना इत्यादि। तथ्य संकलन में उनकी सत्यता और सत्य में निकटता को ध्यान में रखा गया है। ऐतिहासिक तथ्यों का व्यक्तिवादी,समाजवादी और अनुदारवादी सिद्धान्त ,इन सभी को ध्यान में रखा गया है। इनके अलावा सामाजिक,ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सिद्धान्त और मनोविज्ञानवादी सिद्धान्त का भी ध्यान रखा गया है। इस तरह प्रस्तुत पुस्तक में हमने सभी वैज्ञानिक और पारम्परिक सिद्धान्तों और अनुदेश्यों का संतुलित ढंग से पालन किया है और दिए गए विषय पर सर्वोत्तम ढंग से तथ्य संकलन और आलोचनाओं को प्रस्तुत किया है।

प्रो.अर्नाल्ड टाँयनबी ने कहा था कि इतिहास अपने आप को दोहराता है। रूस के प्रख्यात इतिहासकार अर्नोल्डो मिन्डाडोरी ने कहा था कि इतिहास अपने आप को दोहराता है,क्योंकि हम उससे सबक नहीं लेते। इतिहास से सबक लेने का तात्पर्य यही है कि जो कुछ भी दु:खद पहलु रहा है,जिसका दुष्परिणाम इतिहास को भुगतना पड़ रहा है। यदि उन गलतियों से अपने आप को सुधार लिया लाय,तो दु:खद घटनायें दुबारा नहीं होगी। हाँलाकि घटनाएँ यह बताती हैं कि वास्तव में गलतियाँ ही दोहरा दी जाती हैं,उन गलतियों से सबक नहीं सीखा जाता है। शायद यह मानवता के दुख का वह हिस्सा है जो भाग्य व दरिद्रता की तरफ नियत होता हैं। दूसरा पहलू यह होता है कि हम सभी से सिद्ध प्रयास,जो हमारे समृद्धि के कारण थे,वे पुन: किये जाने लगे और ऐसी स्थिति में हर समाज के जिज्ञासु की पहलु यही रहेगी कि इस स्थिति में इतिहास दोहरायेगें और हम इतिहास के इन अध्यायों से बार-बार सबक लेते रहें।

प्राचीन भारतीय विद्वानों ने इतिहास को एक चलायमान युग-चक्र बताया। मानव जीवन,उसका सुख-दु:ख,इसी चक्र से बंधे हुए हैं। यह युग-चक्र चार युग में बंटा है(सतयुग,त्रेतायुग,द्वापरयुग एवं कलियुग)।[1] इसमें मानव सतयुग में सभी सम्बन्धों से युक्त माना जाता है। त्रेतायुग में सुख का थोड़ा-सा अभाव है,लेकिन द्वापर में दु:ख आ जाता है,क्योंकि सुख का अभाव दु:ख होता है। महाभारत दु:ख का प्रारम्भ करता है और

1. झारखण्डे चौबे-इतिहास दर्शन,विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,2001,पृष्ठ संख्या 54

संघर्ष को बढ़ाने वाली परिस्थितियों की बात करता है। रोग,व्याधि,बाह्य आडम्बर का प्रयोग बढ़ने लगता है और समाज को बिगड़ने से बचाने के लिए धार्मिक,आर्थिक,सामाजिक नियम बनाए जाते हैं। कलियुग में धर्म की घोर उपेक्षा होती है। स्वास्थ्य की भावना से अन्याय प्रबल होने लगता है और धर्म की उपेक्षा के कारण ही मानव जीवन का दु:ख उत्पन्न होता है। मानव समाज में परस्पर संघर्ष और स्वार्थ की भावना पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है और फिर मानव जाति के उद्धार के लिए ईश्वर का अवतार होता है। वास्तव में एक सामाजिक परियोजना को उ्देश्य में रखकर समाज के जिन जननायकों ने इतिहास में समाज को नेतृत्व दिया,उन्हें ही अवतार मान लिया गया। इस तरह से भारतीय साहित्य में भी इतिहास का उ्देश्य समाज के बेहतरी के सिद्धान्त से जुड़ा हैं। वर्तमान शिक्षा नीति के तहत इतिहास के उ्देश्यों में अंधविश्वासों को दूर करना और प्रगतिशील विचारों को अपनाना शामिल है। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक में इतिहास के इसी उ्देश्य का अबलम्बन किया गया।

कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था को पढ़ने का और उसमें शोध करने का उ्देश्य यही है कि भारत में एक ऐसी विदेशी(कुषाण)शासक समूह ने अपनी पहचान और महत्व का सिक्का जमा लिया। जिसने भौतिक और सांस्कृतिक उन्नति का कीर्तिमान स्थापित किया,क्योंकि उसकी अर्थव्यवस्था सुदृढ़ थी तथा उसने भारत में और भारत की सीमाओं में प्रचलित धर्म को प्रश्रित किया। साथ ही अन्य धर्म से कोई द्वेष भी नहीं किया। इसलिए धार्मिक परिवेश में बना समाज शक्तिशाली राजनीतिक परिवेश में अपने व्यापार व वाणिज्य,कला व शिल्प ,ज्ञान व विज्ञान सबमें बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने लगा और आर्थिक समृद्धि के कारण ही उसने लगभग प्रत्येक क्षेत्र में तथा बाद में आने वाली स्वर्ण युग की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। कनिष्क के शासन काल में कुषाण राजवंश समृद्ध हुआ, जिससे उत्तरी भारत के सांस्कृतिक विकास में कुषाणों की गणना महत्वपूर्ण चरण के रूप में की जाती है।[1]

कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के अध्ययन का महत्व यह है कि इसमें कला और संस्कृति के साथ -साथ बौद्ध धर्म का प्रसार भी तेजी से हुआ और बौद्ध मठ मध्य एशिया के दुरस्थ क्षेत्रों में भी स्थापित हो गये,क्योंकि उन मठों के लिए अनुदान समृद्ध और धनवान व्यापारियों के काफिले दिया करते थे। व्यापारिक मार्गों का जाल भी बिछ चुका था और उन मार्गों से प्रभुत मात्रा मे व्यापार होने लगा। मौर्यों ने तक्षशिला से पाटलिपुत्र

---

1. रोमिला थापर-भारत का इतिहास ,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2000,पृ.सं.87

तक एक राज्यपथ बनवाया था, जो बाद के वर्षों में आस-पास करके कई बार बना। यह सड़क जी.टी.रोड के रूप में आज भी है। भारत के बंदरगाह नगर ताम्रलिप्ति, भड़ौच आदि महत्वपूर्ण थे और कैस्पीयन सागर, भूमध्य सागर, मिस्र तक हमारे व्यापारिक संबंध थे। पूर्वी अफगानिस्तान तो भारत का एक अंग ही समझा जाता था तथा मध्य एशिया के दरवाजे भी भारत के व्यापार के लिए खुले हुए थे। मध्य एशिया से ऐसा समृद्ध मार्ग निकलता था, जिसे प्राचीन रेशम मार्ग कहा जाता था।

अभी हाल ही में तुर्की के व्यापारिक प्रतिनिधिमण्डल ने भारत से व्यापार अनुबन्ध करते समय सिंधु घाटी की सभ्यता के समय से अपने व्यापारिक संबंधों की मिसाल रखते हुए संबंधों को प्रगाढ़ बनाने पर जोर दिया। [1]

कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था से हम उन क्षेत्रों से अपने सांस्कृतिक संबंधों को बता सकते हैं जिनसे हमारे व्यापारिक संबंध बहुत पुराने हैं और उनके साथ व्यापार हम वर्तमान रूप में भी कर रहें हैं। अत: प्रस्तुत पुस्तक का उ-ेश्य और महत्व इसी में समाहित है।

✹

1. टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 20/11/2001, पृ.सं.8

विषय परिचय

कुषाण काल में भारत की अर्थव्यवस्था में बहुत वृद्धि हुई और भारतीय शिल्प-उद्योगों को बहुत प्रोत्साहन मिला। इसकी कुछ झलक जातकों में मिलती है। तक्षशिला के उत्खनन से भी इस काल के शिल्प-उद्योगों और व्यापार पर कुछ प्रकाश पड़ा है। इस काल के बौद्ध ग्रंथ (जैसा कि मिलिन्दपञ्ह), मनुस्मृति और रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों से भी अर्थव्यवस्था की जानकारी मिलती है। लेकिन कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था को अध्ययन के साँचे में ढ़ालने से पहले प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था के सामान्य विशेषताओं को जान लेना श्रेयस्कर होगा।

आर्थिक गतिविधियाँ उसी समय से शुरू हो गई लगती हैं, जिस समय से मनुष्य आखेटक और खाद्य संग्राहक अवस्था से गुजर रहा था। प्रागैतिहासिक विवरणों के अधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विनिमय प्रणाली तो रही ही होगी। आज भी आदिवासी समाज से लेकर सुसंस्कृतिक समाज में यह प्रथा जारी है, वशर्ते कि उसका स्वरूप भिन्न-भिन्न है।

पाषाणकालीन मानव सत्रह लाख वर्ष पहले उपकरण बनाने में कामयाब हो गया था। इन उपकरणों से वह शिकार को मारता था, मांस खण्डों का आहार के रूप में उपयोग करता था और खालों को शीत से बचने के लिए ओढ़ लिया करता था। लगातार दक्षता का विकास करते हुए उसके सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक क्रिया-कलापों में उन्नति हुई और तीस हजार वर्ष पहले मनुष्य की वह प्रजाति विकसित हुई जो आज भी चल रही है, जिसे होमोसेपियन्स[1] के नाम से मानवशास्त्रीय एवं जीव वैज्ञानिकों ने अभिहीत किया।

मनुष्य समुदायों में रहने लगा। अनुमानित है कि सौ लोगों के समुह आस-पास ही रहते थे। पुरूष वर्ग शिकार करता था और महिलायें बच्चों की देख-भाल, फल-फूल इकट्ठा करना, खालों को साफ करना इत्यादि कार्य किया करती थीं और सभी एकत्रित सामानों को गोत्र प्रमुख अपने समुदाय में बाँट दिया करता था। यह सामुदायिक व्यवस्था का आदिम युग था। होमोसेपियन्स मनुष्य सूक्ष्मदर्शी था। वह जो कुछ देखता था, उसे उसने चित्रित कर दिया। अन्य अनुभवों को संजोकर रखने में तथा अगली पीढ़ी को

---

1. जयनारायण पाण्डेय-पुरातत्व विमर्श, इलाहाबाद, 2000, पृ.सं. 170

विकास के रूप में देने की यह कला मनुष्य को लेखन की ओर प्रवृत्त करती गयी। इन प्रागैतिहासिक चित्रों से मनुष्य के आर्थिक क्रिया-कलापों का पता चलता है, परन्तु उनकी मूलभूत आवश्यकतायें सामुदायिक ढंग पर कैसे पूरी होती थी, यह बताना मुश्किल है।

नवपाषाण काल(Neolithic)तक आते-आते मनुष्य ने कृषि और पशुपालन, दोनों के गुण सीख लिये।[1] अठ्ठारह हजार साल पहले अनुमानित है कि पृथ्वी पर गर्मी बढ़ने लगी, हिम आवरण पिघलने लगे और मध्य पाषाण काल (Mesolithic)में जिस धनुष-बाण और डोंगी[2] (नाव)का आविष्कार किया गया था, वह नवपाषाण काल में अपना प्रभाव दिखाने लगा और मानव समुदाय ने अन्य पशुओं को पालना शुरू कर दिया। कृषि कार्य के लिए कुल्हाड़ी(Selt axe), कुदारी (Hoe), हँसिया(Sickle)आदि महत्वपूर्ण औजार मनुष्य ने गढ़ लिए। चाक के आविष्कार से *मिट्टी* के मजबूत बर्तन बनने लगे। पेड़ की छाल व टहनियों से टोकरियाँ बनने लगीं। अब मनुष्य खाद्य संग्राहक की अवस्था से उठकर उत्पादन की ओर बढ़ चला था और इसी घटना को प्रो.गार्डन चाइल्ड[3] ने नवपाषाणयुगीन क्रांति की संज्ञा दी।

मनुष्य के आर्थिक क्रिया-कलापों में जब अनाज और सब्जियों का उत्पादन शुरू हुआ, तो उन्हें संतुलित भोजन मिलने लगा। उनके शरीर व कार्यक्षमता में वृद्धि होने लगी और दो हजार से एक हजार ईसा पूर्व के बीच पश्चिमी एशिया के लोगों ने लोहे को गलाना और उससे औजार बनाना सीख लिया तथा इसी लोहे के प्रयोग के साथ-साथ किसान एवं शिल्पी अधिक उत्पादन करने लगे। लेकिन तांबे और कांसे के औजार लौह प्रयोगता संस्कृतियों से पहले ही प्रयोग में आ गए थे। सिंधु घाटी की सभ्यता इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है। कृषि उत्पादन में अधिशेष उत्पादन होने लगा था और इसी के आधार पर व्यापक आर्थिक क्रिया-कलापों वाले एक नगरीय समाज का उदय हो चुका था।

सिंधु घाटी सभ्यता विश्व की सबसे प्राचीन नगरीय सभ्यता है और भारतीय उपमहाद्वीप की यह प्रथम नगरीय क्रांति मानी जाती है। यह एक आश्चर्य का विषय है कि सिंधु घाटी की सभ्यता में अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित जितनी भी चीजे पायी गई हैं, वही

---

1. जयनारायण पाण्डेय-पुरातत्व विमर्श, इलाहाबाद, 2000, पृ.सं. 327
2. वही, पृ.सं. 270
3. वही, पृ.सं.327

चीजें आज भी अर्थव्यवस्था की आधारभूत ढाँचे के रूप में उपस्थित हैं। परिवर्तन है तो टेक्नीक दक्षता, परिवहन के साधनों का विकास और वस्त्र-उत्पादन के मशीनी तरीके। सिंधु सभ्यता में जो व्यापार अभियांत्रिकी(Trade Machanism)दिखाई पड़ती है, वहीं कुषाणकाल में और कुषाणकाल के बाद तथा आधुनिक काल में भी दिखाई पड़ती है। व्यापार यांत्रिकी में बाट और माप, ये दोनों चीजें मुख्य होती हैं और तीसरी चीज होती है मुद्रा । हालांकि मौद्रिक साक्ष्य सिंधु सभ्यता से सुस्पष्ट नहीं हैं, फिर भी कुछ विद्वान् कहते हैं कि जो मुद्रायें (Seal)पायी गयी हैं वे शायद आर्थिक मुद्राओं की तरह ही प्रयोग होती रहीं हैं।

नगरीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक गतिविधियों और संस्थाओं का एक जटीय जाल सिंधु सभ्यता के नगरीय अवशेषों में दिखाई पड़ता है। नगरों में वर्ग विभाजन स्पष्ट था। पश्चिमी टीले पर किले बंदी थी और पूर्वी भाग निचला नगर था, जहाँ सामान्य जनता रहती थी। अनाजों के बड़े-बड़े कोठार तथा मजदूरों के सामुहिक आवास, विभिन्न तरह के बर्तन व खिलौने, आभूषण, उपकरण, मिट्टी के खिलौने, हल, इक्का-गाड़ी, बैल-गाड़ी इत्यादि वे सभी चीजें उसी तरह से निर्वरात गति से चलती रही, जब तक की औद्योगिक क्रांति ने विश्व को नई तकनीकी में आने दी। सिंधु घाटी के लोग पशुपालन करते थे, कपास उत्पादित करते थे और वस्त्र बनाने की कला में भी निपुण थे।

दूसरी शहस्त्राब्दी ईसा पूर्व में मध्य एशिया से आर्यों के कबीले भारत में बसने लगे। धीरे-धीरे वे लोहे के औजारों के प्रयोग (लगभग 1000 ईसा पूर्व)से विशाल गंगा घाटी के मैदान को साफ करते हुए सम्पूर्ण भारत में फैल गये और छठीं शताब्दी ईसा पूर्व में कला-कौशल, शिल्प इत्यादि का विकास हुआ। भारत में नगरीय सभ्यता जो पहले सरस्वती क्षेत्र तक सीमित थी, पुन: इतने दिनों बाद गंगा घाटी एवं उसके आस-पास फैलने लगी। इस घटना को छठी शताब्दी ईसा पूर्व का द्वितीय नगरीय क्रांति कहा गया। अर्थ जगत में बाट, माप और मुद्रा का महत्व सिंधु घाटी सभ्यता से ही पता चलने लगता है। वैदिक काल में भी निष्क और हिरण्यपिण्ड का उल्लेख मिलता है। मौर्य काल में सिक्के ढ़ालने के लिए रूपदर्शक, लक्षणाध्यक्ष आदि अधिकारी वर्ग भी थे। जिसमें लक्षणाध्यक्ष टंकण अधिकारी था और रूपदर्शक सिक्कों के खोट का पता लगाता था। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद इण्डो-ग्रिक, शक और पहलवों को अपनी सैनिक गतिविधियों के खर्च को वहन करने के लिए चांदी के सिक्कों के साथ तांबे के सिक्के भी निर्मित करने पड़ते थे।

सातवाहन शासकों ने अतंर्राज्यीय व्यापार व व्यवसाय को सृष्टि में रखते हुए विभिन्न प्रकार के सिक्के निर्गमित किये। सातवाहन शासकों के तांबे के सिक्कों पर उज्जैनी चिन्ह ( )मिलते हैं और उनके सिक्कों पर जहाज, शंख एवं मछली भी बने हैं। स्वर्ण सिक्कों [1] के नमूने कुषाण काल में आकर प्राप्त होते हैं। यद्यपि इससे पहले इण्डों-बैक्ट्रियन शासकों ने सोने के सिक्के चलाये थे। उनके पतन के बाद जब कुषाणों के हाथों में सत्ता आयी तो उन्होंने बैक्ट्रिया, काबुल व कंधार के इलाकों को जीत कर व्यापारिक मार्गों पर अपना नियंत्रण स्थापित किया तथा गंगा से फारस की खाड़ी तक एवं सिंध के मुहाने से लेकर अफगानिस्तान तक के स्थल को व्यापार के लिए प्रोत्साहित किया और रोम के साथ व्यापार को आकर्षित हुए।

कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के बारे में इस युग में लिखे गये बौद्ध ग्रंथ और ईस्वी संवत् की पहली शती में लिखे गये स्ट्रेबों(ज्याग्रफी)और प्लूटार्क के विवरण, पेरिप्लस ऑफ दि एरिथ्रियन सी (लगभग 60-100 ई.)तथा कुषाणों के सिक्के महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराते हैं। कुषाण काल में विकसित गंधार कला, रोमन विद्वान प्लिनी (नेचुरल हिस्ट्री)के लेख आदि से अच्छी जानकारी तो मिलती है, लेकिन इनके स्रोत काफी बिखरे हुए हैं।

अत: प्रस्तुत पुस्तक में कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था को इस प्रकार से शीर्षक-बद्ध करने का प्रयास किया गया है ताकि तात्कालीन अर्थव्यवस्था के बारे में एक समग्र चित्र प्रस्तुत किया जा सके। इन शीर्षकों का विवरण इस प्रकार है-कुषाणकालीन समाज एवं व्यापार तथा व्यापारिक मार्ग, परिवहन के साधन, विनिमय का माध्यम तथा बाट-माप एवं तौल, व्यापारिक नियम और व्यापारिक संगठन, करारोपण और आयात-निर्यात, कृषि, दुर्भिक्ष-सिंचाई, वन-उपवन, पशुपालन तथा शिल्प और उद्योग एवं सिक्के इत्यादि, जिसका अध्ययन एवं मूल्यांकन प्रस्तुत पुस्तक में किया जा रहा है।

✷

1. आनन्द शंकर सिंह-प्राचीन भारत की मुद्राएँ, इलाहाबाद ,1995 ,पृ.सं.69

अध्याय-1

कुषाणकालीन समाज-व्यापार तथा व्यापारिक मार्ग

प्राचीन भारत के समाज-व्यापार एवं व्यापारिक मार्ग को कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत मूल्यांकित किया गया है। व्यापारिक मार्ग में विशेष रुप से प्राचीन भारत में आन्तरिक एवं तटवर्ती मार्ग तथा अन्तर्राष्ट्रीय मार्ग का अध्ययन किया गया है। धर्मसूत्रों ने लोगों को अपने वर्ण धर्म(जातिय कर्त्तव्यों)के अनुसार जीविकोपार्जन करने का बार-बार सलाह दिया। जिससे व्यापार एवं व्यावसायिक एकाधिकार के लिए वैश्यों ने नये संगठनों का निर्माण किया, जैसे-श्रेणी, निगम, सार्थवाह आदि। अत: समाज में व्यापार तत्कालीन अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार था। किसी देश के आर्थिक जीवन में व्यापारिक मार्ग एक धमनी की तरह कार्य करती है। जिससे प्राचीन काल से ही लोगों ने अपनी उन्नति के लिए व्यापारिक मार्ग का निर्धारण कर लिया था।

समाज एवं व्यापार

किसी भी काल में अर्थव्यवस्था का उसके समाज व्यवस्था से सीधा सम्बन्ध होता है। यदि समाज में व्यापारोन्मुख प्रवृत्ति रहती है, तो ऐसा समाज गतिशील कहलाता है और उसकी कार्यशीलता अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण की ओर बढ़ती जाती है। इस काल में रोम, मध्य एशिया, चीन इत्यादि देशों से व्यापार शुरू हो गया और इस उपमहाद्वीप के अनेक बन्दरगाहों और व्यापार केन्द्रों में विदेशियों की बहुत बड़ी संख्या हो गयी। उनमें अनेक लोगों के स्वभाव व आचरण में भारतीयता को अपनाने की ललक थी, किन्तु उन्हें भारतीय वर्ण व्यवस्था में आत्मसात करना समाजवेत्ताओं के लिए समस्या थी। मनु द्वारा रचित मानव धर्मशास्त्र और मनुस्मृति में 200 ई.पूर्व की व्यवस्थाओं का ही अनुसरण किया जा रहा था। चारों वर्ण के कर्तव्य निर्धारित थे और समस्त सामाजिक गतिविधियों का नियंत्रण स्मृतियों पर आधारित था, फिर भी व्यवहार में अनेक विषयर्थ थे।

हिंदुत्व के साथ वर्ण व्यवस्था इस प्रकार जुड़ा हुआ था कि हिंन्दु धर्म में प्रवेश करना शास्त्रीय ढंग से कठिन था अर्थात् धर्म परिपालन सामाजिक व्यवस्था पर ही निर्भर था। ऐसे हालत में यदि कोई एक व्यक्ति हिंदू धर्म ग्रहण करना चाहता है तो उसे उपर्युक्त वर्ण प्रदान करने में कठिनाई थी, क्योंकि वर्ण का निर्धारण तो जन्म से होता था। अहिंदुओं का विशाल समूह धीरे-धीरे इसकी उपजाति बनकर हिन्दू धर्म में आत्मसार हो सकता

था,जिसके लिए पर्याप्त समय,चिंतन और वैचारिक प्रक्रियाओं की आवश्यकता थी। भारत-भूमि में वर्ण-व्यवस्था से ही उपजे एक महान धार्मिक नेता ने वर्णक्रम को दूसरे तरीके से परिभाषित किया। महात्मा बुद्ध ही वह धार्मिक नेता थे,जिन्होंने ऐसा किया। उन्होंने कहा कि वर्णक्रम में क्षत्रिय सबसे ऊपर है,उसके बाद ब्राह्मण,वैश्य और शूद्र अर्थात् उन्होनें ब्राह्मण सर्वोच्चता के बजाय क्षत्रिय सर्वोच्चता पर बल दिया। जिसका परिणाम आगे चलकर यह हुआ कि जब यूनानियों -शकों और कुषाणों ने अपनी शासन सत्ता स्थापित की,तो इनमें से बहुतों ने बौद्ध मत को ग्रहण कर लिया। चूँकि शासक वर्ग से ये लोग थे,इसलिए बौद्ध मत के माध्यम से भारतीय हिंदू समाज में अपनी विक्षिप्त स्थिति प्राप्त कर ली। यह प्रवृत्ति हमें गुप्त काल में भी दिखाई पड़ती है,जब वैष्णव धर्म का बोल-बाला था और यूनानियों(हेलियोदोरस)ने भी वैष्णव धर्म ग्रहण किया था। इस कारण से रूढ़िवादी ब्राह्मण व्यवस्था को और आर्य लोगों के लिए समझौता परक वातावरण तैयार हुआ ,क्योंकि ये विदेशी और आर्य लोग राजनीतिक शक्ति से सम्पन्न थे। इसलिए उन्हे अस्पृश्य कह कर दुत्कारा नहीं जा सकता था और उन्हें प्रतित-तजिस में रखकर एक चतुर युक्ति का प्रयोग ब्राह्मण व्यवस्था द्वारा किया गया।

जिन विदेशियों ने भारत में राजनीतिक और आर्थिक महत्व प्राप्त कर लिया था,उनकी यहाँ उपस्थिति से अनेक सामाजिक समस्याएं खड़ी हो गई। जो लोग निम्न वर्ग के थे वे लोग विदेशियों के साथ मिलकर उच्चतम वर्ग में स्थान पाने का अवसर प्राप्त कर रहे थे। वाणिज्य में व्यवसाय का अर्थ था,बहुत से शिल्पियों को रोजगार मिलना और बहुत से श्रेणियों की संख्या में वृद्धि होना। अधिकतर जो शूद्र वर्ण के थे और इनमें से बहुतों ने अपनी व्यवसाय तथा स्थान परिवर्तन कर अपनी वर्ण स्थिति में सुधार कर लिया। ये समस्याएं उत्तर में अधिक थी,जहाँ अब भी आर्य संस्कारों का मजबूत केंद्र स्थापित था। आर्यीकरण की प्रक्रिया अब भी चल रही थी। ई.पू.की दूसरी शताब्दी में सातवाहन राजाओं ने पैशाची भाषा के स्थान पर संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का प्रचार किया और वैदिक परम्पराओं को आत्मसार कर आर्यीकरण की नीति का अनुसरण किया। सुदूर दक्षिण में बौद्ध धर्म का प्रचार करने वाले विचारक अपने साथ आर्यीकरण को भी लेकर गए थे।

श्रेणिओं के विकास होने से श्रेणी के सदस्यों के लिए शिक्षा की व्यवस्था श्रेणियों ने ही की। वास्तव में वे तकनीक शिक्षा के केन्द्र थे। जहाँ खनन,धातुकर्म, रंगाई,बढ़ईगिरी आदि का ज्ञान संबंधित श्रेणिओं द्वारा सुरक्षित रखा जाता था और उसमें सुधार भी किया जाता था। कुषाण काल से पहले ही बांधों और सिंचाई के प्रयोग में ान

में विदेशी संपर्क से अभूतपूर्व प्रगति हुई। गहरे समुद्रों में जहाजरानी करने के लिए नक्षत्रों का ज्ञान और अध्ययन आवश्यक था। इस ज्ञान के लिए वृत्त पोषण वणिक वर्ग ही करता था।

ईसा की प्रथम शताब्दी में लिखे गये अश्वघोष के नाटक में बौद्ध कथानक हैं। अश्वघोष ने अपने नाटकों में भारत-भूमि के नाट्य शास्त्र का पूरी तरह से पालन किया है, परन्तु दो शताब्दी तक चलने वाले भारत के लिए यह नियम कम उपयोगी रह गए। भारत के नाटक तो रामायण और महाभारत पर आधारित थे या प्रेम-प्रसंगों पर आधारित थे। इसलिए ये राजदरबार के सीमित दर्शकों के लिए था, जबकि अश्वघोष ने जो कुछ सृजित किया, वह धार्मिक सभाओं में उपस्थित जनसाधारण के लिए था।

इस तरह मध्य एशियाई परिवेश के कुषाण शासकों ने जब भारत में बौद्ध धर्म का आश्रय ग्रहण किया, तो उन्होंने बौद्ध धर्म को संरक्षण भी दिया। यद्यपि कनिष्क बौद्ध था, फिर भी उसने यूनानी, मिस्त्री, जरथुस्ट्री और हिंदु देवी-देवताओं के प्रति भी अपनी आस्था अपने सिक्कों में व्यक्त किया। उसके शासन काल में धार्मिक सहिष्णुता के कारण मिस्त्र से व्यापार में वृद्धि हुई। ईसा की पहली शताब्दी में लिखे गए पेरिप्लस ऑफ दि एरीथ्रियन सी में उन वस्तुओं का विवरण है, जिन्हें जहाजों में ले जाया जाता था और उन व्यापारिक मार्गों का भी विवरण है, जिनसे वे जलयान से जाया करते थे। ये किताब 80 ई. में लिखी गयी और कनिष्क का राज्यारोहण 78 ई. बैठता है। इसलिए इस काल की अर्थव्यवस्था के लिए यह बहुत अच्छी पुस्तक सिद्ध होती है। इस पुस्तक के अनुसार इथुपिया से अफ्रिकी हाथी दांत एवं सोना यहाँ आता था और वह भारतीय मलमल के लिए बाजार था। जहाँ आज कल जौडन स्थित है, वहीं पर पेट्रा नामक नगर पश्चिमी एशियाई मार्गों से लाल सागर के मार्गों को जोड़ता था। वास्तव में अरब मे अनेक तटीय नगर इस प्रकार के मार्गों से जुड़े हुए थे।

डायोस्पाराइड सोकोट्रा का द्वीप था, जो विनिमय के लिए एक महत्वपूर्ण बंदरगाह था तथा भारतीय जलयान चावल, गेहूँ, कपड़ा यहाँ लाते थे और कछुए की पीठ की हड्डी यहाँ से ले जाते थे। फारस की खाड़ी के दक्षिण तट पर स्थित नगर भारतीयों से तांबा, चंदन, सागौन तथा अबनूस लेते थे और भारत को मोती, बैगनी रंग, कपड़ा, शराब, खजूर, सोना तथा दारू भेजते थे। इनमें से कुछ बंदरगाहों का उपयोग बहुत पहले सिंधु घाटी के लोगों द्वारा सुमेर के साथ व्यापार में किया जाता था। सिंधु के मुहाने पर बारबैरिकम एक ऐसा बंदरगाह था, जो क्षोमवस्त्र, पुखराज, मूगाँ, शिलाजीत, लोहवान, कांच, चांदी, सोने की तस्तरियाँ और मदिरा का आयात करता था तथा बहुत प्रकार के

मशालों,फिरोजे,नीलम,मलमल,रेशम के धागे और नील का निर्यात भी करता था।

बेरीगाजा भारत के पश्चिमी तट पर सबसे प्राचीन तथा सबसे बड़ा प्रवेश द्वार था और पश्चिमी एशिया के साथ अधिकांश व्यापार इसी के माध्यम से होता था। यहाँ से विविध प्रकार के मिले-जुले माल का आयात भी होता था,जिसमें इटली,यूनान तथा अरब की मदिरा,ताँबा,टीन,जस्ता,मूंगा,पुखराज,शीलाजीत,मीठी-दारू, कांच, सूरमा, सोने-चांदी की मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की औषधीयुक्त मलमल शामिल थे। स्थानीय शासकों के लिए उपहार भी दिये जाते थे,जिसमें स्वर्ण और रजत,आभूषण,उच्च कोटि के शराब और वस्त्र आदि शामिल होते थे। बेरीगाजा या भड़ौच से निर्यात होने वाली सामग्री में मसाले,जटामासी,मालबाथम,हीरे,नीलम,कछुए की पीठ की हड्डी आदि शामिल थी।

इनमें से कुछ बंदरगाहों के पुरातात्विक खोजो से पता लगता है कि उस समय व्यापार के लिए मार्ग प्रायद्वीप के चारो ओर होकर ऊपरी तट पर जाता था। उसमें से अरिकामेडु,जिसे पेरिप्लस में पेडोक कहा गया है,यहाँ से रोमन बस्ती का प्रमाण मिला है।[1] अरिकामेडु से मलाया और चीन जाने वाले मार्ग पर एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह था। रोमन मिट्टी की बर्तन,काँच व मिट्टी की मूर्तियाँ आदि ईसा पूर्व 200 से 200 ई.तक अरिकामेडु की बस्तियों में प्रयुक्त होते रहें। इसलिए इसमें कुषाणकालीन बस्तियों का समय अर्न्तभूत है। अरिकामेडु से पाये गये सिक्के आगस्टस तथा टैबेरियस के थे। निरो के सिक्को में खोट था और उन्हें चलने से रोकने के लिए एक छड़(Rod)से चिन्हीत कर दिया गया था। रोम के साथ होने वाले व्यापार में भारत को हर वर्ष दस करोड़ सेस्टर्स(Sesosteres)की प्राप्ति होती थी। इसलिए प्लिनी [2] ने शिकायत की थी कि रोमन लोग विलासिता के सामान के लिए अपनी राष्ट्रीय आय का बहुत बड़ा भाग भारत को दे देते हैं। रोम के धनी लोग मसाले,रत्न,वस्त्र,तोते,मोर,बंदर और लंगूर इत्यादि मंगाया करते थे। रोम के व्यापार का यह लाभ रोम के अनुकूल नहीं,बल्कि भारत के अनुकूल था।

कुषाण काल में कनिष्क ने जब अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य स्थापित कर लिया,तो

---

1. रामनिहोर पाण्डेय-दक्षिण भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,इलाहाबाद ,2000, पृष्ठ संख्या 34

2. जयनारायण पाण्डेय-पुरातत्व विमर्श,इलाहाबाद,2000,पृष्ठ संख्या 584

उसके साम्राज्य के पूर्व में चीन और पश्चिम में पार्थिया साम्राज्य की सीमायें थीं। इस काल के आर्थिक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण घटना भारत का मध्य एशिया तक पाश्चात्य जगत से तीव्र और घनिष्ठ व्यापारिक संबंध से है। जैसा कि सुविदित है कि कुषाण जगत से पहले भी भारत के व्यापारिक संबंध दूर देशों से थे और इस समय के मार्गों से परिवहन के साधनों का ही उपयोग कुषाण काल में किया गया। जब तक आधुनिक विज्ञान का विकास नहीं हुआ,तब तक व्यापारिक मार्ग की बनावट तथा वहाँ मिलने वाली सुविधायें वही थीं,जो मौर्य काल में थीं। सड़कों के किनारे सरायों का होना,सार्थवाहों के निर्देशन में काफिलों का चलना,इन सबका विवरण लगभग इसी तट से मिलता है, जैसा कि ईसा पूर्व छठीं शताब्दी के नगरीकरण के द्वितीय चरण में दिखाई पड़ता है। कुषाण साम्राज्य से बाहर भारत के ही दूसरे हिस्सों में भी व्यापारिक मार्गों का जाल -सा था ,जबकि यह मार्ग पहले से ही था। बस इन मार्गों पर कुषाण शासकों का अधिकार हो गया था।

अंत में कहा जा सकता है कि कुषाणों ने अपनी शासन सत्ता स्थापित कर बौद्ध मत के साथ राजनीतिक तथा आर्थिक महत्व भी प्राप्त कर लिया,परन्तु उनकी यहाँ उपस्थिति से अनेक सामाजिक समस्याएं खड़ी हो गईं। ये समस्याएं दक्षिण की अपेक्षा उत्तर भारत में अधिक थी। व्यापार मे हाथी दांत,सोना,चावल,गेहूँ,कपड़ा,कछुए की पीठ की हड्डी इत्यादि महत्वपूर्ण थे। अत: उपर्युक्त विवरण से कुषाणकालीन समाज एवं व्यापार स्पष्ट हो जाता है।

व्यापारिक मार्ग

किसी देश के आर्थिक जीवन में व्यापारिक मार्ग का महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्राचीन काल से ही लोगों ने अपनी उन्नति के मार्ग का निर्धारण कर लिया था। पुरापाषाण काल में भी समूहों एवं उपसमूहों के बीच सामाजिक एवं आर्थिक संपर्क के साधन,जल एवं थल मार्ग ही थे। ये मार्ग ही कालान्तर में व्यापारिक मार्ग के रुप में विकसित हुए। व्यापारिक मार्ग का अध्ययन आंतरिक एवं तटवर्ती मार्ग तथा अन्तर्राष्ट्रीय मार्ग के रुप में किया जा रहा है।

(i) आन्तरिक एवं तटवर्ती व्यापारिक मार्ग

सिंधु सभ्यता के अवसान के समय हड़प्पावासियों का व्यापार सुरक्षित नहीं रहा तथा उनके नगर कुछ आक्रमणकारी खानाबदोशों के हाथों आ गये। ईसा पूर्व 1800 के लगभग सम्पूर्ण पश्चिम एशिया एवं उससे सटे हुए देशों में आन्दोलनों का समय था। इस समय हमलावर खानाबदोशों ने अनातोलिया(तुर्की)से एलम तथा सिंधु घाटी तक

सभी देशों को नष्ट करके भारत एवं पश्चिमी एशिया के बीच के व्यापारिक मार्ग को रोक दिया और हड़प्पावासियों के समृद्ध व्यापार को उन्होंने नष्ट कर दिया। कुछ विद्वानों का कहना है कि यह आक्रमणकारी खानाबदोश आर्य थे।[1] ये आर्य कंधार के मार्ग से होते हुए कुल्ली,नल इत्यादि के हड़प्पाई व्यापार प्रतिष्ठानों को बिल्कुल नष्ट कर दिए।[2] हड़प्पा पर आक्रमण करने वाले आर्य संभवत: कंधार तथा बोलन घाटी से होकर आए थे तथा सुराष्ट्र,गौरी,कुभा(काबुल),गोमती(गोमल)और यद्यावती की घाटी में बस गए थे।[3]

नदी के किनारे ऐसी सांस्कृतिक वर्गो के रहने से नदी घाटी के साथ,व्यापारिक मार्गों के क्षेत्रीय विकास की सम्भावना को व्यक्त करती है। संभवत: ईसा पूर्व 1500 के कुछ बाद आर्यों ने खैबर के मार्ग तथा काबुल की घाटी द्वारा भारत एवं बैक्ट्रीया के बीच मार्ग खोला । इसी समय से यह मार्ग भारत और पश्चिमी एशिया के बीच मुख्य मार्ग हो गया और कंधार तथा मकरान के मार्गों की महत्ता कम हो गयी।[4] कुषाणों के समय में यह मार्ग प्रचलित था। शतद्रु(सतलज)से आर्यों का सरस्वती घाटी की ओर प्रवजन उनकी उन्नति की द्वितीय युग की ओर संकेत करती है।

इन्द्र के नेतृत्व में आर्यों ने सप्तसिंधु के 90 नगरों को नष्ट कर डाला था।[5] बाद में जब आर्यों ने अपने प्रतिद्वन्दियों को सप्तसिंधु से भगा दिया,तो उन्होंने नगरीय जीवन तथा व्यापारिक मार्गों में रूचि लेना शुरू कर दिया।[6] वे प्राकृतिक मार्गों पर निर्भर नहीं रहे,बल्कि इन मार्गों को उचित व्यापारिक मार्गों में बदल दिया। ऋग्वेद में कहा गया है कि मरूत ने राह में खड़े छोटे-छोटे पहाड़ियों को तोड़कर मार्ग बनाना शुरू कर दिया।[7] सोम,पुसन सड़कों के संरक्षक होते थे और मरूत यात्रियों को अच्छी सुविधा देने वाले होते थे।

कुषाण काल में भी कुछ नगरों का अस्तित्व तो था ही ,जिनका उल्लेख शतपथ

---

1. ई.जे.एच.मैकी-अर्ली इण्डस सिविलाइजेशन,लौजाक,1948,पृष्ठ संख्या 91
2. ऋग्वेद,6,27,6
3. एच.डी.संकालिया-दि एक्सवेशन्स ऐट महेश्वर एण्ड नवतौली, 1952-53,पृ.सं.244
4. एच.डी.संकालिया-फ्राम हिस्ट्री टू प्री हिस्ट्री ऐट नेवासा, 1954-56,पृ.सं.467
5. आर.ई.एम.व्हीलर-इण्डस सिविलाइजेशन,पृ.सं.90-91
6. ऋग्वेद,1,112,11
7. ऋग्वेद,2,34,5

ब्राह्मण में मिलता है, जैसे-आसंदीवत [1](कुरूक्षेत्र,हस्तिनापुर),काम्पिल्य तथा विदिशा का उल्लेख मिलता है। आसंदीवत को मजूमदार ने जनमेजय की राजधानी बताया। बुद्ध के समय और बाद में पालि साहित्य में मार्गों का वर्णन मिलता है। इसमें तक्षशिला होत हुए पश्चिमी एशिया से संबंद्ध मार्ग का उल्लेख है। जातक कथाओं में भी उल्लेख मिलता है कि यह मार्ग सामान्य खतरों से मुक्त था और छात्र बिना किसी हथियार के शिक्षा ग्रहण करने के लिए यहाँ तक आते थे। कौटिल्य ने व्यापारिक मार्गों के दो रूपों को बताया है-पहला उत्तरापथ और दूसरा दक्षिणापथ।

उत्तरापथ की जानकारी के लिए तक्षशिला से प्रारम्भ करना अधिक सुविधाजनक है। तक्षशिला भारत के अन्य प्रान्तों(कोशल, मल्ल, अवन्ति, मगध,श्रावस्ती,वाराणसी)से जुड़ा हुआ था और यह मार्ग दूसरे मार्गों से अच्छा था, क्योंकि इससे ज्यादा कीमती वस्तुयें जाती थीं। जैसे हाथी दांत,कस्तूरी ,चमड़ा,सोना-चांदी आदि। जातक कथाओं में अन्तरदेशी मार्गों का उल्लेख मिलता है। नि:संदेह कौटिल्य द्वारा उत्तरापथ का मार्ग कुषाण काल में और अधिक जीवंत था। एक जातक में अनाथपिण्डक के कारवाँ का श्रावस्ती से राजगृह और दक्षिण -पूर्व की ओर वापस जाते हुए उल्लेख मिलता है। जबकि श्रावस्ती से राजगृह की दूरी लगभग 300 मील थी। इस मार्ग में बारह पड़ाव थे,जिसमें कुशीनगर और राजगृह के बीच वैशाली भी आती थी और यह पथ पाटलिपुत्र में गंगा को पार करती थी। बनारस का उज्जैन के साथ व्यापार तेजी पर था। जिसके व्यापारी कौशाम्बी से होकर आते-जाते थे तथा इस मार्ग ने विशाल उत्तरापथ से दक्षिण -पश्चिम सड़क को अलग कर दिया था।[2] मथुरा में यमुना पर एक मार्ग पश्चिम की ओर सिंधु तक था,जहाँ से घोड़ों और खच्चरों का बड़ी मात्रा में आयात होता था। यही मार्ग सौबीर तक विकसित था।

कौटिल्य [3] ने देश में विभिन्न श्रेणियों की सड़कों का उल्लेख किया है। इसमें पहला राजमार्ग ,दूसरा प्रांत के प्रशासनिक कार्यालयों को जोड़ने वाले मार्ग,तीसरा द्रोणमुख[4] की ओर जाने वाले मार्ग और चौथा स्थानीय मार्ग [5] थे। इसके अतिरिक्त रथ-

---

1. आर.सी.मजूमदार-दि वैदिक एज,लंदन ,1957,पृ.सं. 251
2. सुत्तनिपाद के पद 1011-13
3. अर्थशास्त्र ,2,4
4. चार सौ गाँव का प्रधान केन्द्र वाला स्थान
5. आठ सौ गाँव का प्रधान केन्द्र वाला स्थान

मार्ग, चारागाह मार्ग, व्यापारिक मंडियों की ओर जाने वाला मार्ग(जिसे संगीयावी कहते थे), सेना के ठहरने का मार्ग, जलासय का मार्ग, पगदण्डी आदि मार्ग भी थे। इन सभी मार्गों से व्यापार की वस्तुएं बाजार में देश के विभिन्न स्थानों से लायी जाती थीं, जहाँ उसका उत्पादन होता था। इन मार्गों द्वारा सम्पूर्ण देश के व्यापारी सामानों को विभिन्न उत्पादन स्थानों से बाजार को लाते थे।

कौटिल्य [1] ने दक्षिणापथ के संबंध में विस्तार से लिखा है। जबकि वे स्वयं उत्तर भारतीय थे। कौटिल्य के अनुसार हाथी, शंख, हीरा, मणि, मोती, सुवर्ण दक्षिण की ओर अधिक प्राप्त होती थी। दक्षिण में केवल कंबल, चर्म और घोड़े इत्यादि नहीं मिलते थे। लेकिन अनेक विक्रय वस्तुएं उत्तर की अपेक्षा अधिक थीं। इसलिए दक्षिण का मार्ग ही श्रेयष्कर था। इस मार्ग में यात्रा करने में कोई कठिनाई नहीं थी और कोई खतरा भी नहीं था। जबकि उत्तरी व्यापारिक मार्ग की तुलना में दक्षिण भारत का मार्ग बहुत दुर्गम था और फाहियान [2] के अनुसार दक्षिणापथ में सड़क खतरनाक थी तथा उन पर यात्रा करना भी कठिन था। दक्षिण भारत में भी व्यापार योग्य वस्तुओं को लाने-लेजाने का कार्य मुख्य रूप से नदियों द्वारा किया जाता था, क्योंकि कथाओं में सौबीर, भरूकच्छ, सुप्पारक, कावेरीपत्तन, करम्बिया, गम्भीर जैसे बन्दरगाहों का उल्लेख मिलता है।[3]

इस प्रकार उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के बीच वाणिज्यिक संबंध थल मार्ग की ही भांति, समुद्र द्वारा भी था। गंगा दक्षिण भारतीय राज्यों तथा पूर्वी एवं पश्चिमी राज्यों के लिए उत्तर भारत के व्यापार का मुख्य मार्ग था। गंगा एक बाजार नगर था, जो गंगा नदी के तट पर स्थित था।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्ग

दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के पहले भारत एवं पश्चिम के बीच समुद्री मार्ग की अपेक्षा थल मार्ग अधिक प्रचलित थे। भारतीय व्यापार के दृष्टिकोण से बैक्ट्रिया महत्वपूर्ण स्थान रखता था, क्योंकि वहाँ से भारतीय व्यापार की योग्य वस्तुयें पूर्व में खोतान, यारकन्द, कशगर तथा चीन को, उत्तर-पश्चिम में आक्सस की घाटी को तथा पश्चिम में तिग्रिस की घाटी को जाती थी। रोम एवं भारत के व्यापार मार्ग के बीच ईरान के शासक पहलवों द्वारा

---

1. अर्थशास्त्र 7,12
2. ए रेकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट कन्ट्रीज बाई फाहियान-पीकिंग ,संस्करण 1957, पृ.सं.75
3. बी.स्मिथ-कॉमर्स ऑफ दी एन्शिएन्ट्स खण्ड-2, पृ.सं.404

अनेक बाधाएँ उत्पन्न की गई, परन्तु उन बाधाओं का अंशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा और रोम एवं भारत फारस की खाड़ी एवं लाल सागर के माध्यम से एक दूसरे के निकट हो गए। प्रो.मयूरी का अनुमान है कि इनमें से एक मार्ग द्वारा भारतीय हाथी दांत कम्पोनिया के तट पर पहुंचा होगा। भारत एवं चीन के बीच सबसे प्राचीन मार्ग सम्भवत: आसाम, वर्मा से होकर जाता था। इसी मार्ग से मुख्य रूप से चीनी सिल्क भी भरूकच्छ आता था और वह सेल्यूसिया तथा सिकन्दरिया को आयात होता था। पी.सी.बागची [1] ने यह संकेत दिया है कि चीन के लिए आसाम-वर्मा मार्ग, पाटलिपुत्र से प्रारम्भ होकर चम्पा, भागलपुर, कजंगला तथा पुण्ड्रवर्धन को पार करता था और कामरूप को जाता था। भारतीय व्यापारी सामान्यत: कपिशा होकर तक्षशिला से बैक्ट्रिया आते हुए मध्य एशिया होकर चीन के लिए बहुत से मार्ग अपनाते थे। इस प्रकार बैक्ट्रिया खोतान, यारकंद, चीन, रोम, फारस की खाड़ी से भारत का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्ग संभव था।

अत: स्पष्ट है कि उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के बीच वाणिज्यिक संबंध थल एवं जल मार्ग से था। गंगा दक्षिण भारतीय राज्यों तथा पूर्वी एवं पश्चिमी राज्यों के लिए उत्तर भारत के व्यापार का मुख्य मार्ग था। जबकि भारत का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्ग बैक्ट्रिया, खोतान, चीन, रोम आदि देशों से संभव था।

✷

1. पी.सी.बागची-इण्डिया एण्ड चाइना, बंबई, 1950, पृ.सं.17

अध्याय-2

परिवहन के साधन, विनिमय का माध्यम तथा बाट-माप एवं तौल

प्राचीन काल में आदि मानव अपने जीवन-यापन के लिए शिकार करता था। काल परिवर्तन के साथ-साथ उसने अपनी सुविधा के लिए व्यवसाय को अपनाया। व्यवसाय करने के लिए यातायात एवं परिवहन के साधनों की आवश्यकता थी, जिससे उसने परिवहन के साधनों की खोज की। जिन्हें परम्परागत साधनों के रूप में देखा जा सकता है। उन्हीं साधनों का परिमार्जित रूप आज हमारे उपयोग में है। प्राचीन भारत में मुद्रा के चलन का इतिहास अभी भी विवादास्पद है। चावल को मुद्रा के रूप में विनिमय हेतु उपयोग किया जाता था। बाट एवं माप का विस्तृत इतिहास मुद्रा से भी प्राचीन है। ए.एन. बोस जैसे विद्वानों का विचार है कि बाट एवं माप पूर्व ईसा काल की शताब्दियों में गंगा घाटी में प्रचलित था। तौलने का पैमाना व्यापार के लिए एक महत्वपूर्ण साधन था। तराजू का प्राचीन नाम तुला था, जिसका उल्लेख वाजसनेयी संहिता में हुआ है। अत: प्राचीन काल में परिवहन के साधन, विनिमय का माध्यम तथा बाट-माप और तौल को कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत मूल्यांकित किया गया है।

परिवहन के साधन

आखेट युग से लेकर आज तक के अभियांत्रिक युग में भी मानव के मन एवं शरीर की गतिशीलता निरन्तर बनी है। व्यवसाय करने के लिए यातायात एवं परिवहन के साधनों की नितान्त आवश्यकता का अनुभव कर उसने परिवहन के साधनों की खोज की, जिन्हें परम्परागत साधनों के रूप में देखा जा सकता है। परिवहन के साधन के रूप में थल(स्थल)परिवहन एवं जल परिवहन मुख्य थे।

(i) थल परिवहन के साधन

सी.एच.कोल ने स्वयं स्त्रियों को भारवाहन का सर्वप्राचीन साधन माना है।[1] जबकि प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य स्वयं भारवाहन के साधन थे। वे भार ढोने के लिए अपने हाथ या सिर का प्रयोग करते थे, परन्तु बाद में सामान्य रूप से घरों में पशुपालन का कार्य शुरू हुआ तो भारवाहन के लिए पशुशक्ति का उपयोग प्रारम्भ हुआ अर्थात् पशु परिवहन का साधन बना। बैल ही ऐसे प्रारम्भिक पशु थे, जिनका भारत में सर्वप्रथम

1. सी.एच.कोल-हिस्ट्री ऑफ टेक्नालॉजी, भाग-1, पृष्ठ संख्या 704

परिवहन के साधन के रूप में उपयोग किया गया था। सिंधु घाटी की सभ्यता में वृषभ से युक्त पहिये वाली गाड़ियों का उपयोग लगभग 2000 ईसा पूर्व तक होता रहा। ये गाड़ियाँ पूर्णरूपेण नागरिकों एवं आर्थिक परिवहन के लिए उपयोग में लायी जाती थीं। इन गाड़ियों को खींचने वाले पशुओं में वृषभ प्रमुख थे। ऋग्वेद में बैलों के लिए अनडवाह शब्द के उपयोग से यह प्रतीत होता है कि बैलों का उपयोग गाड़ियों को खींचने के लिए किया जाता था। कौटिल्य ने तीन प्रकार की गाड़ियों का उल्लेख किया है, यथा- लघुमान(छोटी गाड़ी), गोलिंग(मध्यम आकार के बैलों द्वारा खींची जाने वाली गाड़ी) तथा शकट(बड़ी गाड़ी)। विनयपिटक में यह उल्लेख है कि एक भिक्षु भेड़ों के ऊन को तीन योजन तक ढोकर ले गया था।[1] अत: ऋग्वेद और कौटिल्य के विवरण ही कुषाण काल में थल परिवहन के साधन के रूप में प्रयुक्त रहे होगें, ऐसा अनुमान है।

(ii) जल परिवहन के साधन

जल परिवहन के सबसे प्रारम्भिक साधन पानी में तैरते हुए लकड़ी के टुकड़े अथवा कुन्दे थे, जो आपस में बँधे हुए होते थे। सिंधु घाटी में उन्नत किस्म के नाव(Canoes)एवं जहाज के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। मैकी के अनुसार एक पोत के वाह्य ढांचे पर कुछ चिन्ह यह स्पष्ट करते हैं कि यह सरकण्डों का बना हुआ था, जो आपस में बँधे हुए थे। यह पोत निर्माण की एक विधि थी, जो प्राचीन मिस्र में बड़े नाव बनाने में प्रयुक्त होती थी।[2] इनमें मस्तुल नहीं थे। इसका उपयोग केवल नदी यातायात के लिए किया जाता था।

बड़े जहाजों का संचालन राज्य द्वारा भी होता था। मौर्यों ने अपना स्वयं का जहाज रखा था, जिसका उपयोग व्यापारी एवं यात्री किराया देकर करते थे। मेगस्थनीज के अनुसार जहाज बनाने वाले मौर्य सरकार के वेतनभोगी कर्मचारी थे, जो सौदागरों अथवा व्यापारियों को किराये पर जहाज उपलब्ध कराते थे। रामायण में भी यह उल्लेख है कि जहाजों में बड़ी संख्या में व्यापारी समुद्री मार्ग से जाते थे।[3] महाभारत में जलमार्ग को पार करने के लिए केवल नाव को ही साधन माना गया है। स्वास्तिक प्रकार का बड़ा

---

1. दीर्घनिकाय, खण्ड-3, पृष्ठ संख्या 200
2. ई.जे.एच.मैकी-अर्ली इण्डस सिविलाइजेशन, लौजाक, 1948, पृष्ठ संख्या 133
3. रामायण, बालकाण्ड, 45,6

नाव [1] नदी परिवहन के लिए उपयुक्त था। महाभारत में एक ऐसे नाव का उल्लेख है,जिसमें एक यंत्र लगाया गया था। जिस पर माल अथवा यात्रियों को लाद कर उस समय सुरक्षित रूप से पहुँचाया जा सकता था।

मौर्य शासन के अन्तर्गत जल परिवहन के सभी साधन राज्य के नियंत्रण में थे,जिनकों नवाध्यक्ष [2] देखता था। यात्री किराये के रूप में यात्रा-वेतन देते थे,जिसे नौकाध्यक्ष वसूल करता था। अत: सामान्यतया व्यापार में परिवहन की यह व्यवस्था कुषाण काल से लेकर आज तक आंशिक परिवर्तनों के साथ चल रही है। इस प्रकार तटीय व्यापार के साथ-साथ सड़क,रेल एवं वायु परिवहन के साधन भी आज व्यापार हेतु पर्याप्त रूप से उपयोग किये जा रहे हैं।

विनिमय का माध्यम

प्राचीन भारत में मुद्रा के चलन का इतिहास अभी भी अस्पष्ट एवं विवादास्पद है। सैंधववासियों में यद्यपि तौल की पद्धति प्रचलित थी,परन्तु सिक्कों का प्रचलन इस समय तक नहीं हुआ था। जातक कथा में वर्णन है कि चावल को मुद्रा के रूप में विनिमय हेतु उपयोग किया गया था।[3] वैदिक भारत में निष्क तथा हिरण्यपिण्ड सम्भवत: दो प्रकार की धातु मुद्राएँ प्रचलित थी। कुछ विद्वानों का यह विश्वास है कि वे सिक्के न होकर आभूषण मात्र थे। डी.आर.भण्डारकर ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि निष्क एक सिक्के का नाम था,जो देश मे प्रचलन में था।[4] ब्राह्मण एवं उपनिषद काल में भी निष्क को मानक सिक्का के रूप में प्रयुक्त किया गया था।

धीरे-धीरे लोग स्वर्ण एवं रजत मुद्राओं को मूल्यवान वस्तुओं के विनिमय के माध्यम के रूप में अपनाने लगे,साथ ही साथ ताँबे के सिक्के भी साधारण व्यापारिक विनिमय के लिए मुद्रा के रूप में स्थान प्राप्त कर चुके थे। समय के विकास के साथ निष्क का प्रचलन एक निश्चित भार एवं मूल्य की धात्विक मुद्रा के रूप में बढ़ने लगा। यह इतना अधिक प्रमाणित हो गया कि लोग धन की गणना निष्क के रूप मे करने लगे।

---

1. एन.आर.व्यास-रामायणकालीन समाज,दिल्ली, 1958,पृष्ठ संख्या 249
2. हेमचन्द्र रायचौधरी-प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास,इलाहाबाद,पृष्ठ संख्या 211
3. जातक-6,पृष्ठ संख्या 519
4. डी.आर.भण्डारकर-लेक्चर्स ऑन एंशियन्ट इण्डियन न्यूमिस्मेटिक्स,कलकत्ता ,1921,पृष्ठ 68

अर्थशास्त्र मे सुवर्ण का उल्लेख एक कर्ष के वजन के बराबर किया गया है। रजत कार्षापणों की पहचान सामान्यतया चांदी के पंचमार्क सिक्कों से की गई है। सिक्के के नाम के रूप में कुर्षापण का उल्लेख नासिक के गुफा अभिलेख(सातवाहनों का अभिलेख)में किया गया है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कार्षापण के एक अन्य नाम ' प्रति ' का उल्लेख किया है। अर्थशास्त्र में रजत कार्षापण का भार एक कर्ष निश्चित किया गया है। मौर्य शासकों ने प्राचीन भारतीय चलन पद्धति में तांबे का प्रचलन किया था,जिसे बाद की सरकारों से भी आगे की तीन या चार शताब्दी तक मान्यता मिली थी।[1]

विदेशी शासकों जैसे इण्डोग्रीक,शक तथा पहलव को मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण उत्पन्न मौद्रिक प्रणाली की रिक्तता को भरने तथा भारत में अपनी सैनिक गतिविधियों की बड़ी लागत को पूरा करने के उ्देश्य से चांदी के सिक्कों के साथ-साथ ताँबे के सिक्के निर्गमित करने पड़े, परन्तु उनका विनिमय मूल्य तथा भारतीय व्यापार पर प्रभाव निश्चित करना कठिन है,क्योंकि प्रारम्भ में स्पष्टतया उनका क्षेत्रीय एवं राजनीतिक प्रभाव था।

यह आश्चर्य की बात है कि अभी हमने स्वर्ण सिक्कों का कोई नमूना कुषाण काल के पूर्व का प्राप्त नहीं किया है। यद्यपि साहित्यिक साक्ष्य स्वर्ण सिक्कों के वैदिक व्युत्पत्ति का संकेत करते हैं। कुषाणों के पूर्व भारत में स्वर्ण चलन की जो भी स्थिति रही हो,परन्तु यह कहा जा सकता है कि धात्विक चलन के आगमन से रजत तथा ताम्र चलन ने ही भारत के आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा किया था। कुषाणों ने बैक्ट्रिया,काबुल और कंधहार क्षेत्रों को जीतकर भारत के प्रवेश द्वारों को नियंत्रित किया। सिंघ के मैदानों में एवं अफगानिस्तान में एक सुगठित शक्ति की स्थापना की। उचित अवधि में गंगा से फरात और गंगा से फारस की खाड़ी तक तथा सिंध के मुहाने तक थल मार्ग में एक सतत् व्यापार को प्रोत्साहित किया।[2]

अत: इन सभी तथ्यों ने स्वाभाविक रूप से कूजुल कडफिसेस को भारत-रोम व्यापार के लिए आकर्षित किया।। कुषाणों ने रोम के ढांचे के अनुरूप सिक्कों की प्रणाली को प्रचलित करके व्यापारियों को प्रोत्साहित किया,जिससे व्यापार की निर्बाध

---

1. वी.एस.अग्रवाल-इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनी,लखनऊ, 1952,पृष्ठ संख्या 269-70
2. ई.एच.वारमिंगटन-कामर्श विट्वीन रोमन एम्पायर एण्ड इण्डिया,कैम्ब्रिज,1928, पृष्ठ संख्या 267-68

प्रक्रिया सतत् चलती रही।

बाट -माप एवं तौल

बाट एवं माप का विस्तृत इतिहास मुद्रा से भी प्राचीन है। ईसा पूर्व के तीन सहस्राब्दी में सिंधु क्षेत्र के उत्खनन भारत में प्रमुख विभिन्न प्रकार के बाटों की जानकारी कराते हैं। बाट एवं माप की जालसाजी को संगीन अपराध समझा जाता था।[1] मौर्य सरकार द्वारा नियुक्ति पौतवाध्यक्ष तथा संस्थाध्यक्ष की तरह ही विशिष्ट अधिकारी बाट एवं माप का परीक्षण करने के लिए प्रत्येक चार या छ: महीनों के बाद नियुक्त किये जाते थे।[2] गलत बाट एवं माप द्वारा धोखा देने का उल्लेख दीर्घनिकाय [3] तथा अपष्टम्ब धर्मसूत्र [4] में देखने को मिलता है।

संभवत: बाट राज्य नियंत्रण में निर्मित होते थे तथा दुकान में बिकते थे। कौटिल्य ने विभिन्न प्रकार के बाटों की एक मूल्य सूची प्रस्तुत की है। धनीयमाप के निर्माण के सम्बन्ध में कौटिल्य कहते हैं कि उसको सूखे एवं मजबूत लकड़ी का बना हुआ,नीचे -ऊपर से बराबर,शिखर में चतुर्थांश से युक्त मान अर्थात् अनाज आदि मापने का वर्तन होना चाहिए। प्राचीन काल में यद्यपि बाटो की यथार्थता कायम रखने की प्रत्येक सावधानी रखी जाती थी,फिर भी उनमें कुछ दोष होने की सम्भावना बराबर रहती थी। इससे बचने के लिए अनाज की थोड़ी-सी (मुट्ठी भर)मात्रा को मापित मात्रा में मिला देने की पद्धति को व्यवहार में लाया जाता था। इस व्यवहार को हस्तपूरण कहते थे।

मनु एवं याज्ञवल्क्य की बाट प्रणाली के अन्तर्गत यद्यपि कृष्णल को सोना तथा चांदी तौलने के लिए स्वीकार किया गया था,परन्तु इसके मूल्य एवं वजन भिन्न थे। स्वर्ण एवं बाट प्रणाली में एक उल्लेखनीय अन्तर मनु ने वर्णित किया है कि स्वर्ण धरण,रजत धरण की अपेक्षा एक वजनी श्रेणी का बाट था(उदाहरण के लिए 3200 कृष्णल का)। हीरे के लिए तौल की निम्नतम इकाई चावल(तण्डुल)के बराबर थी तथा सबसे भारी इकाई धरण थी। जिसे वैदूर्भ धरण के रूप में जाना जाता था। चावल के बीस

---

1. मनुस्मृति, 8,403
2. अर्थशास्त्र, 2,19,40
3. दीर्घनिकाय,खण्ड-1,पृष्ठ संख्या 19
4. अपष्टम्ब धर्मसूत्र ,2,6,19

दाने एक धरण के समतूल्य थे।[1] कौटिल्य के अर्थशास्त्र से हम यह अनुमान लगाते हैं कि यद्यपि भारी वजन के लिए तुला थे, फिर भी भारी वजन के बारे में सूचना अपर्याप्त है। सम्भवत: द्रव मापने के लिए मापक पात्र थे।

रेखा सम्बन्धी माप के लिए एक अंगुल सबसे स्वाभाविक एवं प्रारम्भिक इकाईथी। जातक, अष्टाध्यायी तथा अर्थशास्त्र में हम रैखिक माप का विवरण प्राप्त करते हैं। बाटों की ही भाँति कुछ इसी प्रकार के आडम्बरी माप भी थे। जैसे-परमाणु, रथरेणु, लिक्षा, यूक, यवमध्य इत्यादि। कपड़े इत्यादि माप के लिए अन्य रैखिक माप, जैसे-वितस्ति अथवा दिष्ति, हस्त तथा किष्कु: का सामान्य उपयोग होता था। इन प्राकृतिक मापों के अतिरिक्त कुछ यांत्रिक उपकरण भी प्राचीन भारत में प्रचलित थे। मोहनजोदड़ों से दशमलव प्रणाली की माप का एक टूटा हुआ नमूना प्राप्त हुआ है।[2]

सिंधु सभ्यता में तौलने का पैमाना व्यापार के लिए एक महत्वपूर्ण उपसाधन था। तराजू का प्राचीन भारतीय नाम तुला था। तुला शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख वाजसनेयी संहिता में हुआ है। कौटिल्य ने व्यापारियों की तुला का प्रत्येक चार महीने बाद निरीक्षण करना सरकार का कर्त्तव्य माना है। कौटिल्य ने सोलह प्रकार के तुला की गणना की है। इनमें से दस हल्के प्रकार की तुला थी, जिसमें दो पलड़े थे।[3] भारी तुला छ: प्रकार की थी। सबसे भारी तुला लकड़ी का बना हुआ था। जिसमें आठ हाथ का लीवर था। भारी वस्तुओं को तौलने के लिए प्रति तोल बाटों का प्रयोग किया जाता था।[4] महानारदकस्सप जातक में एक तौल भवन का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार यह अनुमान लगा सकते हैं कि कुषाण काल में तौलने वाले पलड़ों पर बाट का प्रयोग होने लगा था।

अत: उपर्युक्त विवरण से कुषाणकालीन परिवहन के साधनों, विनिमय का माध्यम, बाट-माप एवं तौल स्पष्ट हो जाता है। जो कि कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पक्ष था।

✷

1. अर्थशास्त्र, 2,19,7
2. ई.जे.एच.मैकी-अर्ली इण्डस सिविलाइजेशन, लौजाक ,1948, पृष्ठ संख्या 103
3. अर्थशास्त्र, 2/19/12
4. अर्थशास्त्र, 2/19/25

अध्याय-3

व्यापारिक नियम और व्यापारिक संगठन

प्राचीन व्यापारिक नियम और व्यापारिक संगठन को कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के अंतर्गत मूल्यांकित किया गया है। कौटिल्य ने देश के सुदूर क्षेत्रों में व्यापार के प्रबन्धन हेतु नियम वर्णित किया है। ये सभी क्षेत्रबाजार अथवा नगरों से संबद्ध थे। व्यापारिक संगठन के अन्तर्गत साझेदारी, साझेदारी के सिद्धान्त और सहकारिता का वर्णन किया गया है। सहकारिता की भावना मनुष्य में एक सामाजिक प्रवृत्ति है, जिसका उल्लेख प्राचीन भारतीय आर्थिक जीवन में किया गया है।

व्यापारिक नियम

धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं भारत की अन्य साहित्यिक कृतियाँ स्पष्ट रूप से यह प्रकट करती हैं कि जनता एवं शासन के बीच किस प्रकार सामाजिक एवं आर्थिक संबंध नियमित रूप से बना रहे। राजा को जनता के प्रति न्याय की स्वच्छता के लिए सब कुछ करना पड़ता था।[1] अत: यह अनुमान किया जा सकता है कि राजा अपने देश के व्यापार की रक्षा हेतु सन्नद्ध रहता था तथा व्यापारियों से यथासम्भव राजकीय कोष में दान स्वरूप कुछ राशि भी लेता था। इसलिए व्यापारिक नियम के अन्तर्गत वस्तुओं की ढुलाई के नियम, विदेश में व्यापार करने की विधि, जलमार्ग से व्यापार करने के नियम एवं शर्तें, राजकीय एकाधिकार, तटीय व्यापार के नियम हेतु विधान, पथकर की छूट, अधिकार-पत्र एवं मूल्य निर्धारण आदि का अध्ययन किया गया है।

(i) वस्तुओं की ढुलाई के नियम

जातक कथाओं से हम यह जानकारी प्राप्त करते हैं कि किस प्रकार व्यापारियों द्वारा देश के विभिन्न भागों में व्यापार साहसपूर्ण संचालित होता था। ये व्यापारी कारवाँ में चलते थे और या तो राजमार्गों का या नदियों का व्यापार हेतु प्रयोग करते थे। देश में निर्मित वस्तुओं का केन्द्रीकरण किया जाता था तथा आयातित वस्तुएँ विक्रय हेतु विभिन्न बाजारों में वितरित की जाती थीं। कौटिल्य ने कहा है कि व्यापारी उतना अधिक लाभ नहीं कमाते थे, जिससे जनता को हानि हो।[2] अत: ऐसा अनुमान है कि वस्तुओं की ढुलाई

1. महाभारत, शांतिपर्व, 56,87-89
2. अर्थशास्त्र, 2,16,6-7

का यह नियम कुषाण काल तक प्रचलित था।

(ii) विदेश में व्यापार करने की विधि

कुषाणकालीन व्यापार व्यवस्था के अन्तर्गत यह कहा गया है कि विदेश में व्यापार करता हुआ व्यक्ति जब तक अपने देश में न लौट आये तब तक वह वहाँ के राजा के जितने भी देय अंश हो(कर आदि)उन सबको नियम पूर्वक अदा करता हुआ ही अपने व्यापार को चलाये क्योंकि करापवंचन उस समय भी दण्डनीय अपराध माना जाता था। अर्थशास्त्र में भी इस तथ्य का लिखित प्रमाण है।[1] उपर्युक्त वर्णन से कुषाण काल में विदेश में व्यापार करने की विधि स्पष्ट हो जाती है।

(iii) जलमार्ग से व्यापार करने के नियम एवं शर्तें

न केवल समुद्री मार्ग में बल्कि नदी मार्ग में भी उन देशों के आचार एवं वाणिज्य -व्यापार को अच्छी तरह जानकर ही तथा जिस मार्ग से लाभ हो उसी का अनुसरण व्यापारी को करना उचित था। विदेश में थोड़े से लाभ या अलाभ के लिए प्रवास आदि का क्लेश सहन करना व्यापारी के लिए उचित नहीं माना गया था। ऐसे मार्ग को सर्वथा छोड़ देना ही व्यापारी के लिए कल्याणकारी था।[2] अत: अनुमान है कि जल मार्ग से व्यापार करने की यह जानकारी कुषाण काल तक भी प्रचलित थी।

(iv) राजकीय एकाधिकार

खान एवं खदानों से खोदकर निकाले गये हर वस्तु पर मनु ने राजा का स्वामित्व सिद्ध किया है।[3] अत्यधिक लाभकारी उद्योग जो विदेशों में विस्तृत बाजार पर अधिकार रखते थे और जो राजकीय कोष को भरते थे। ऐसे उद्योग राजकीय नियंत्रण में रखे जाते थे। खनिज पदार्थों के उत्खनन एवं उनके व्यापार में राज्य का एकाधिकार था। नमक राज्य के एकाधिकार का एक दूसरा क्षेत्र था। अत: राजकीय कोष को संतुलित रखने के लिए कुषाणों ने इस अधिकार को अपने पास सुरक्षित रखा।

(v) तटीय व्यापार के नियमन हेतु विधान

भारत का समुद्र के पार के देशों से सामुद्रिक व्यापार राज्य की आय का एक

---

1. अर्थशास्त्र ,2,16,23
2.. अर्थशास्त्र, 2,16,25
3. मनुस्मृति ,8,39

महत्वपूर्ण स्रोत था। कुषाणों का उस समय आयात एवं उसके उचित वितरण पर प्रत्यक्ष नियंत्रण था, बल्कि राज्य विदेशी जहाजों को भी आवश्यक सुरक्षा प्रदान करता था। इस प्रकार तटीय व्यापार का यह नियम कुषाण काल तक प्रचलन में था।

(vi) पथकर की छूट

पथकर की मापी के लिए अर्थशास्त्र में भी कुछ नियम बताया गया है। इस कानून से यह संकेत मिलता है कि उन वस्तुओं के स्थानान्तरण पर चुंगी की छूट थी, जिनसे लाभ प्राप्त करने का कोई उ-ेश्य नहीं होता था। नारद ने भी उन पदार्थों में चुंगी की छूट की बात कही है, जिनका घरेलू उपयोग था तथा वे विक्री हेतु नहीं थे।[1] अत: पथकर की छूट से कुषाण भी अवगत थे।

(vii) अधिकार-पत्र

कौटिल्य ने 'आज्ञा-पत्र के बिना दुकान नहीं ' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। यह आज्ञा उन्हीं लोगों को दिया जाता था, जो खाद्यान्न या अन्य व्यापार योग्य वस्तु को एकत्र करने हेतु मध्यस्थ के रूप में कुषाण राजा के पास आवेदन करते थे। कौटिल्य ने तो स्पष्ट कहा है कि केवल अधिकारिक व्यक्ति ही अन्न एवं अन्य व्यापार योग्य सामग्रियों को एकत्रित कर सकते हैं।[2] इस नियम को कुषाण शासकों ने भी सुरक्षित रखा।

(viii) मूल्य निर्धारण

कुषाणकालीन व्यापार का अध्यक्ष व्यय को ध्यान में रखते हुए निर्मित वस्तु की मात्रा, चुंगी की राशि, व्यय पर ब्याज, किराया तथा अन्य अतिरिक्त व्यय को ध्यान में रखते हुए वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करता था। साथ ही उस वस्तु के बहुत समय पहले निर्मित होने अथवा उसके सुदूर देश से आयातित होने का भी ध्यान रखा जाता था। मनु [3] एवं याज्ञवल्क्य [4] ने भी मूल्य अथवा लाभ के नियम हेतु इसी प्रकार के विधान का उल्लेख किया है। अत: कुषाण शासक व्यापार के लिए मूल्य निर्धारण को महत्वपूर्ण मानते थे। इस प्रकार उपर्युक्त विवरणों से कुषाणकालीन व्यापारिक नियम स्पष्ट हो

---

1. नारदस्मृति, 4,14
2. अर्थशास्त्र, 4,42,26-28
3. मनुस्मृति ,8,401
4. याज्ञवल्क्यस्मृति, 2,251-53

जाता है।

व्यापारिक संगठन

व्यापारिक संगठन के अन्तर्गत साझेदारी, साझेदारी के सिद्धान्त एवं सहकारिता का अध्ययन किया गया है। प्राचीन भारतीय व्यापार में साझेदारी व्यवस्था प्रचलित थी। बौद्ध साहित्य में साझेदारी को व्यापार का एक संगठित स्वरूप माना गया था। साझेदारी के सिद्धान्त के अन्तर्गत दो व्यापारियों की साझेदारी को अच्छी साझेदारी माना जाता था। सहकारिता की भावना मनुष्य में एक सामाजिक प्रवृत्ति है। प्राचीन भारत के आर्थिक जीवन में इसका स्पष्टीकरण प्राप्त होता है। वृहदारण्यकोपनिषद से ज्ञात होता है कि वैश्यों ने सहकारिता के माध्यम से ही धन अर्जित किया था, न कि व्यक्तिगत रूप से।

(i) साझेदारी

बौद्ध काल में साझेदारी को व्यापार का एक संगठित स्वरूप माना जाता था। इस अवस्था के अनेक साक्ष्य या तो स्थायी तौर पर या केवल विशिष्ट अवसरों पर बौद्ध साहित्य में प्राप्त होते हैं। चुल्लकसेट्ठी जातक में एक युवक के उद्योग का उल्लेख है, जिसने किनारे खड़े जहाज के पुर्जो को खरीदा था। उसके पश्चात् बनारस के सौ सौदागरों ने इस व्यवसायी के बारे में सुना और उन सभी ने एक हजार सिक्के देकर एक-एक हिस्से को उससे प्राप्त कर लिया था। उसके पश्चात् पुन: एक-एक हजार मुद्रा देकर पूरा जहाज ही उन लोगों ने प्राप्त कर लिया था।[1] सेरीवाणिज जातक में दो सौदागरों का उल्लेख किया गया है, जो साझेदार के रूप में व्यापार कर रहे थे।[2] उत्तरापथ के अश्व के व्यापारी अपना व्यवसाय संयुक्त रूप से करते सुने गये थे। बबेरू जातक में चिड़ियों के व्यापार का उल्लेख है, जो भारत से बेबीलोन को निर्यात होते थे। उपर्युक्त सभी प्रसंग कुषाणकालीन भारतीय व्यापार में साझेदारी व्यवस्था के प्रचलन को स्पष्ट करते हैं।

(ii) साझेदारी के सिद्धान्त

कूटवाणिज जातक में यह उल्लेख है कि दो व्यापारियों की साझेदारी को अच्छी साझेदारी कही जाती थी।[3] कौटिल्य ने भी काश्तकारों, व्यवसायियों या शिल्पकारों के साझेदारी के बारे में कहा है कि काश्तकार अथवा व्यवसायी अपने श्रमिकों को उनके

---

1. जातक -1, पृष्ठ संख्या 114
2. जातक -1, पृष्ठ संख्या 111
3. जातक -1, पृष्ठ संख्या 404

कार्य के अनुपात से अधिक अंश भुगतान करें।[1] कुषाणकालीन व्यापार में भिन्न-भिन्न शिल्प एवं उद्योग साझेदारी के अलग सिद्धान्त पर चलाये जाते थे, जो पूँजी पर आधारित न होकर प्रत्येक भागीदार की निपुणता तथा प्रावैधिक ज्ञान पर आधारित था। वृहस्पति का भी कहना है कि स्वर्णकार अथवा अन्य शिल्पकार, चांदी, धागा, काष्ठ, पत्थर अथवा चमड़े का काम संयुक्त रूप से करते थे। वे अपने कार्यों की प्रकृति के अनुसार उचित अनुपात में लाभांश लेते थे।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि कुषाणकालीन भारत में व्यापार की उन्नति में संघों का महत्वपूर्ण योगदान था।

(iii) सहकारिता

सहकारिता की भावना मनुष्य में एक सामाजिक प्रवृति है। संघ सामाजिक अभिरूचि का एक स्वाभाविक प्रतिरूप है। परिणामस्वरूप सामान्य उ-ेश्य के लिए एक विशेष इकाई का निर्माण होता है। व्यवसायियों के निगम के सम्बन्ध में सबसे प्रारंभिक संदर्भ ऋग्वेद में प्राप्त हुआ है, जहाँ देवताओं को पणियों पर आक्रमण करने को कहा गया है। पणि सबसे प्रारम्भिक व्यवसायी थे, जो कारवाँ बनाकर आर्य आक्रमणकारियों को रोकने तथा उनसे युद्ध करने के लिए गये थे। अलिनचित्त जातक में बुनकरों के संघ का वर्णन मिलता है, जो बनारस के करीब रहते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि सहकारिता की यह परिपाटी कुषाण काल तक भी प्रचलित थी।

इस प्रकार व्यापारिक नियम एवं व्यापारिक संगठन(साझेदारी, साझेदारी के सिद्धान्त एवं सहकारिता) के माध्यम से कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था स्पष्ट हो जाती है।

✷

---

1. अर्थशास्त्र ,3,14,19
2. वृहस्पतिस्मृति ,13,7

अध्याय-4

करारोपण एवं आयात-निर्यात

प्राचीन भारत में राज्य जनता की एक आर्थिक एवं राजनीतिक आवश्यकता थी और उसके संपूर्ण अधिकारों की रक्षा राजा में ही निहित थी। राजा को सूर्य की भाँति व्यहार करना पड़ता था, जो धरती से केवल वाष्प रूप में जल ग्रहण करता है और उसे वर्षा के रूप में वापस कर देता है। इसी प्रकार राजा से भी आशा की जाती थी कि वह जनता से इस आशय से कर प्राप्त करे कि पुन: उन करों को लाभ के रूप में जनता को वापस कर दे। आज की कर प्रणाली इसी लक्ष्य पर आधारित है, जिसमें न्यूनतम त्याग और अधिकतम लाभ का उ-ेश्य निहित है। कुषाण काल में देश में उत्पादित वस्तुओं का विनिमय आंतरिक एवं बाह्य बाजारों में सुगमता से होता था। प्राचीन भारत एवं सुदूर देशों की अर्थव्यवस्था को आपस में जोड़ने वाले व्यापार के वस्तुओं का आयात-निर्यात किया जाता था। अत: प्राचीन भारत के करारोपण एवं आयात-निर्यात को कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत मूल्यांकित किया गया है।

करारोपण

कीन्स की महान आर्थिक क्रांति के समय से ही राज्य का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है और जनता के हितों का सम्पूर्ण दायित्व भी राज्य ही वहन करता रहा, परन्तु राज्य के संबंध में यह विचार पूर्णरुपेण नवीन नहीं है। प्राचीन भारतीय विद्वानों और न्यायविदों ने अपने विभिन्न उल्लेखों में इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि राज्य प्रारम्भ से ही समष्टिगत विकास के क्षेत्र में एक पुष्ट एवं रचनात्मक भूमिका अदा कर रहा है। कालबर्ट भी कहते हैं कि करारोपण की कला बत्तख को उस प्रकार नोचने में निहित है, जिससे कम से कम तकलीफ में अधिक से अधिक पंख एकत्र किया जा सके। ठीक इसी प्रकार कुषाण राजा से भी यह आशा की जाती थी कि वे सम्पन्न जनता से कम से कम कर प्राप्त करें। करों की मांग धीरे-धीरे तब तक ऊपर उठे, जब तक कि वह उचित राशि की सीमा तक न पहुँच जाय।

मनु ने भी इस बात पर जोर दिया है कि राजा को कर से आय प्राप्त करने के लिए इस प्रकार की नीति का अनुसरण करना चाहिए कि करदाता अपने कार्य-कलापों में व्यस्त रहे। कौटिल्य ने भी लिखा है कि राजा को एक माली की तरह व्यवहार करना चाहिए, जो केवल पके फलों को ही तोड़ता है तथा कच्चे फलों को छोड़ देता है। कुषाण

काल में स्पष्ट रूप से समझा जाता था कि अति कर लोगों को गरीबी की ओर ले जायेगा और उनकी करदान क्षमता भी कम होगी। अत: कुषाणकालीन राजस्व व्यवस्था में सीमा के अंदर ही करारोपण का लक्ष्य रखा गया था।

भूमि की पैमाइश तथा उसका वर्गीकरण (जैसे-कृषि योग्य भूमि, चारागाह, बाग इत्यादि का विवरण) राज्य के खाते में अंकित था, जिससे कि सभी खादानों(जिसमें मनुष्य एवं पदार्थ सम्मिलित हैं)के शुद्ध आंकड़े उपलब्ध रहते थे।[1] प्राचीन भारत में कर के ढाँचे में भूमिकर तथा सीमाकर दो अत्यन्त महत्वपूर्ण कर थे। अधिकांश प्राचीन भारतीय विधिवेत्ताओं ने सामान्यतया इस तथ्य का उल्लेख किया है कि कुषाण काल में भूमि के उत्पादन का छठा भाग ही कर के रुप में था। करारोपण की एक दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता कर प्रेरणा हेतु प्रदत्त सुविधाएँ थी। करारोपण के अंतर्गत अब हम आयकर, परोक्षकर, पथकर के अतिरिक्त चुंगी अधिकारी के विषय में भी संक्षिप्त अध्ययन करेगें, जो आवश्यक है।

(i) आयकर

मनुस्मृति से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम विश्व के आर्थिक जीवन चक्र में आयकर मनु की ही देन है। मनुस्मृति से ज्ञात होता है कि राजा और व्यापारी, दोनों ही (जिसमें फलयुक्त हों) घाटे में न रहें। इस स्थिति को ध्यान में रखकर ही राजा को सदा देश में कर लगाना चाहिए।[2] कर लाभ तथा आय पर ही लगता है। अत: सामान्य अर्थ में किसी प्रकार के लाभ तथा आय पर लगाया गया कर ही आयकर है। कुषाण काल में जो भी कर लगाया जाता था उसका यह उ-ेश्य कदापि नहीं होता था कि करदाता का समूल नष्ट हो जाए, बल्कि आज की ही भांति करदान क्षमता के अनुरूप करारोपण होता था। इस प्रकार मनु की दूरदर्शिता एवं अद्भुत तीव्र आर्थिक विचारधारा ने कुषाणों की अर्थव्यवस्था में वृद्धि करने के लिए आयकर की व्यवस्था प्रदान की। अत: कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाए रखने के लिए कुषाणों को आयकर की आवश्यकता महसूस हुई।

(ii) परोक्षकर

महाभारत [3] के शांतिपर्व में यह कहा गया है कि राजा अपने वित्त अथवा कोष

1. के.आर.सरकार-पब्लिक फाइनेन्स इन एंशियेन्ट इण्डिया ,पृष्ठ संख्या 73
2. मनुस्मृति, 7,128
3. महाभारत, शांतिपर्व ,1,19

की सुरक्षा सावधानीपूर्वक करे,क्योंकि राजा उसी कोष पर निर्भर रहते हैं और उसी से राज्य का कल्याण होता है। अत: उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि कुषाण राजा अपने व्यापार की रक्षा हेतु अपने कार्य के प्रति सन्नद्ध रहते थे। साथ ही व्यापारियों से भी जो हो सकता था वे राजकीय कोष में अधिकतम योगदान देते थे। जिससे कुषाण काल में परोक्षकर स्पष्ट हो जाता है।

(iii) पथकर

जातक कथाओं में आंतरिक व्यापार तथा आयात-निर्यात की वस्तुओं पर करों का उल्लेख मिलता है। शराब एवं मादक पेय पर भी करों का उल्लेख है,जो ग्रामयोजकों द्वारा ग्रामवासियों से लिया जाता था। इसके साथ ही नगर प्रवेश द्वार पर पथकर लिया जाता था।[1] अत: जातकों से स्पष्ट है कि कुषाणों ने अपने आय के स्रोत में पथकर को भी यथावत स्थान दिया।

(iv) चुंगी अधिकारी

राजा को दिये जाने वाला अंश का नाम चुंगी(शुल्क)था। इस कार्य पर नियुक्त हुए प्रधान राज्याधिकारी को शुल्काध्यक्ष कहा जाता था। शुल्काध्यक्ष शुल्कशाला की स्थापना करके और उसके पूर्व तक उत्तर की ओर प्रधान द्वार के समीप एक ध्वज लगवा देता था। जिससे वह शुल्कशाला प्रतीत होता था।[2] कुषाण काल में वाणिज्य व्यवस्था में जनहित एवं सामाजिक लाभ के उ-ेश्य को भी शुल्क अथवा कर ग्रहण में ध्यान रखा जाता था। जो पदार्थ राष्ट्र को पीड़ा पहुँचा सकते थे, जैसे-विष,मादक द्रव्य आदि तथा अच्छा परिणाम न देने वाली वस्तु को राजा नष्ट करवा सकता था। अत: कुषाण काल में व्यापार के इस अधिकारी को भी यथोचित सम्मान प्राप्त था।

इस प्रकार कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था का एक मजबूत पक्ष उस काल का विभिन्न प्रकार का कर था। जो आयक,परोक्षकर एवं पथकर के रूप मे लिया जाता था।

आयात-निर्यात

किसी भी अर्थव्यवस्था को उन्नत तभी कहा जा सकता है जब अर्थव्यवस्था के प्रत्येक पक्षों में अनुकूलता हो। इन पक्षों में एक महत्वपूर्ण पक्ष देश का व्यापार है जो

---

1. जातक-6,पृष्ठ संख्या 347
2. अर्थशास्त्र, 2,21,1

आन्तरिक एवं बाह्य,दोनों क्षेत्रों में सम्पन्न होता है। प्राचीन भारत में देश में उत्पादित वस्तुओं का विनिमय आंतरिक एवं बाह्य बाजारों में सुगमता से होता था। अत: प्राचीन भारत एवं सुदूर देशों की अर्थव्यवस्था को आपस में जोड़ने वाले व्यापार के उन वस्तुओं का आयात-निर्यात किया जाता था। आयातित वस्तुओं में दास, घोड़ा, रेशम, पटसन, मदिरा,सोना, तांबा,जस्ता, रांगा,मूंगा आदि था। जबकि निर्यात की वस्तुओं में कालीमिर्च, दालचीनी, नील,कपास एवं सागौन आदि था।

भारत में गुलामों का आयात पश्चिमी देशों से होता था। भारत में ग्रीक लड़कियों का आयात इस बात का प्रमाण था कि दास व्यापार का विकास भारत में उस समय तेजी से हो रहा था,जब रोमवासियों ने यूनानियों की शक्ति क्षीण की थी। पेरिप्लस के अनुसार ओम्मान से बैरीगाजा को दास तथा राजाओं के अन्त:पुर के लिए सुंदर दासियाँ आयात की जाती थीं। रामायण में कम्बोज और बाहलीक का उल्लेख है,जो घोड़ों के लिए प्रसिद्ध थे।[1] प्राचीन काल में रेशम की पर्याप्तता के लिए चीन ही प्रसिद्ध था। चीनी सिल्क के पदार्थ भारत में महज एशिया को पार करते हुए पहलव व्यापारियों द्वारा लाया जाता था। फारस एवं मध्य एशिया तील के भण्डार के रूप में थे।[2] सम्भवत: सर्वप्रथम इसकी खेती फरात घाटी तथा अफगानिस्तान के बीच में कहीं होती थी। अत: कुषाण काल में तिल फारस से आयात हुआ करता था।

पेरिप्लस तथा प्लिनी के विवरण से ज्ञात होता है कि पटसन मिस्र से भारत को आयात हुआ करता था। बहुत समय तक इजिप्शियन पटसन व्यापारिक जगत में अपना सर्वोच्च स्थान बना चुका था। चरकसंहिता [3] में मदिरा का विस्तृत विवरण दिया गया है। मदिरा भारत में एक देशी उद्योग था। इस प्रकार भारत मदिरा का स्वयं उत्पादक था। कुषाण काल में सोने की आपूर्ति के लिए मुख्य एशियाई स्रोत साइबेरिया था। ओम्मान से इसका आयात बैरीगाजा को होता था। सुश्रुत ने इसे ताकत इत्यादि की औषधि के रूप में वर्णित किया है।[4] ईसा के प्रारम्भिक शताब्दियों में जस्ता,ताँबा तथा राँगा धातुओं की आवश्यकता भारतीय सिक्कों के लिए होती थी। रोमवासी स्पेन से रांगा का आयात करते थे। वे तांबा साइप्रस से मंगाते थे। तांबा,जस्ता और रांगा का आयात बैरीगाजा को भी

---

1. रामायण,बालकाण्ड, 6,21-22
2. जी.वाट्स-सी सेम आयल,पृष्ठ संख्या 11
3. चरकसंहिता,2,176-193
4. सुश्रुतसंहिता, 46,326

होता था।[1] ईसा काल के प्रारम्भ में मुंगे का व्यापार भूमध्यसागर तथा भारत के बीच में हुआ करता था। इसका आयात पेरिप्लस के अनुसार बारबेरिकम तथा बैरीगाजा को होता था।

भारत एवं सुदूर देशों को आपस में जोड़ने वाले व्यापार के अन्तर्गत हम व्यापार में प्रयुक्त उन वस्तुओं का भी निरीक्षण करेगें, जो भारत से बाह्य जगत को निर्यात किये जाते थे। विदेशी शासक यूनानी, शक, पार्थियन तथा कुषाण भारत के व्यापार में रूचि रखते थे। पादप उत्पादों में कालीमिर्च भारत एवं पश्चिम देशों के बीच एक महत्वपूर्ण व्यापारिक वस्तु थी। चरक एवं सुश्रुत के चिकित्सकीय शोधों में इसका उल्लेख औषधि के रूप में बार-बार किया गया है।[2] रोम के बहुत से सिक्के भारत में कालीमिर्च के व्यापार के महत्व के बारे में साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। रोमवासियों द्वारा दालचीनी का उपयोग ज्यादा किया जाता था। कालीमिर्च की भाँति दालचीनी भी समुद्री मार्ग से लाया जाता था। श्रीलंका इसके उत्पादन का सर्वदा महत्वपूर्ण स्थान था तथा इसकी पूर्ति का अधिकांश भाग लंका एवं भारत से रोम को जाता था।

बारबेरिकम से सिंध नदी के जलमार्ग द्वारा नील का निर्यात होता था।[3]पश्चिमी एशिया, मिस्र तथा भूमध्यसागरीय देशों में रंग तथा दवा के रूप में इसका मूल्यांकन किया गया। भारत से ही निर्यात होकर फारस में इसका प्रचलन हुआ था। बहुत प्राचीन काल से कपास भारत में पैदा होता है तथा इससे वस्त्र बुना जाता है। भारतीय सूती वस्त्र एरियक जिले से पूर्वी अफ्रिका को निर्यात होते थे।[4] सागौन भारत का सबसे महत्वपूर्ण इमारती लकड़ी है, क्योंकि यह पानी को रोक सकता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से कुषाणकालीन आयात-निर्यात भी स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि आयात के रूप में दास, घोड़ा, रेशम, पटसन, मदिरा और खनिज उत्पादन में सोना, तांबा, जस्ता, रांगा, मूंगा था, तो वही निर्यात के रूप मे कालीमिर्च, दालचीनी, नील, कपास और सागौन महत्वपूर्ण था।

✷

1. पेरिप्लस, पृष्ठ संख्या 49
2. चरकसंहिता, 38,58-60
3. पेरिप्लस, पृष्ठ संख्या 39
4. पेरिप्लस, पृष्ठ संख्या 6

अध्याय-5

कृषि,दुर्भिक्ष-सिंचाई,वन-उपवन,पशुपालन और शिल्प-उद्योग

कृषि में पन्द्रह प्रकार के चावल का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त दाल,फल,मसाले का भी उल्लेख है। रामायण में दस और महाभारत में बारह वर्ष के दुर्भिक्ष का वर्णन किया गया है। सिंचाई के लिए नहरों एवं तालाबों का प्रयोग होता था। बड़े-बड़े नगरों में वन और उपवन का साक्ष्य प्राप्त होता है। अर्थशास्त्र,मनुस्मृति,रामायण और महाभारत में पशुपालन को कृषि के बराबर महत्व दिया गया है। जबकि धातु उद्योग में लोहा,सोना,तांबा, कांसा इत्यादि का खनन से लेकर वस्तु निर्माण तक की विधियाँ दिखती हैं। अत: प्राचीन भारत के कृषि,दुर्भिक्ष-सिंचाई,वन-उपवन,पशुपालन और शिल्प-उद्योगों का मूल्यांकन कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत किया गया है।

कृषि

कुषाण काल में कृषि की वही परम्परा दिखाई पड़ती है,जो ईसा पूर्व 600 से 300 ई.तक वाद गति से चलती रही। इस समय भी सूत्रग्रन्थ,प्राचीन बौद्ध एवं जैन ग्रंथ और मौर्यकालीन उपज जो विभिन्न स्रोतों में लिखे हैं,जैसे-सूत्र ग्रंथ में दो प्रकार के जौ(यव और यवानी),पांच प्रकार के चावल(कृष्ण,व्रीहि,महाव्रीहि,हायन,यवक और पष्टीक)और दालों (उड़द,मूंग और कुलथी)का उल्लेख मिलता है।

नि:सन्देह कुषाण काल में वही खेती की जाती रही,जो पहले से चली आ रही थी। कुषाण काल के चरकसंहिता[1] में पन्द्रह किस्मों के अच्छे चावल का उल्लेख है,जिसमें कलम किस्म का भी उल्लेख है। उसमें चावल की पाँच घटियाँ किस्मों का भी उल्लेख है।[2] तृण-धान्यों में कोरदूषक[3] का भी उल्लेख है। सुश्रुतसंहिता में गेहूँ की दो किस्मों का उल्लेख है,जिनके नाम हैं-मधूलिका और नंदामुखी।[4]

फलों में बेर की वर्णित तीन किस्मों(कुवल,कर्कन्धु,बदर)के अतिरिक्त चौथी

1. चरकसंहिता,27,7-8
2. चरकसंहिता,27,11
3. चरकसंहिता,27,15-17
4. सुश्रुतसंहिता,46,21

किस्म सौवीर का भी उल्लेख है। इसके अतिरिक्त नारंगी, कमरख और सेब का उल्लेख चरकसंहिता में मिलता है।

इस प्रकार कुषाण काल में आनाज, दाल, फल और मसाले वही हैं, जो मौर्य काल में दिखाई पड़ते हैं। चना, मटर, मसूर, अरहर, हरेणु एवं जीपल, लौंग, कालीमिर्च, जीरा, हींग, सरसों, आँवला, सोठ, हल्दी, मरूवक, हरीतरी का भी उल्लेख मिलता है। इनके अलावा कुषाण काल में कई किस्मों के पत्ते वाले साग [1], ईख, कपास और सन की खेती भी की जाती थी। अत: पर्याप्त साक्ष्य से कुषाणकालीन कृषि स्पष्ट है।

दुर्भिक्ष-सिंचाई

दुर्भिक्ष और सिंचाई के बारे में डायोडोरस का कथन है कि भूमि उपजाऊ थी और नदियों से सिंचाई भी की जाती थी। इसलिए सम्भव है कि भारत में दुर्भिक्ष के कारण भूखमरी अधिक नहीं होती थी। लेकिन जातकों में यह उल्लेख है कि जब खेती के लिए जंगल काटे गए तो वर्षा की कमी हो गयी। रामायण में दस वर्षों के सूखे का वर्णन मिलता है।[2] महाभारत में भी बारह वर्ष के सूखे का वर्णन मिलता है।[3] जिससे दान-दाताओं ने दान देना बन्द कर दिया, कृषि और पशुपालन भी कोई मनुष्य नहीं करता था और बड़ी संख्या में पशु मर गए। जातक कथाओं से स्पष्ट है कि दुर्भिक्ष के कारण प्रजा को कष्ट होता था और उसके लिए शासक अपने आप को उत्तरदायी समझता था।[4] कौटिल्य ने लिखा है कि दुर्भिक्ष के समय राजा को किसानों का भू-राजस्व माफ कर देना चाहिए।[5] यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस काल में जो दुर्भिक्ष पड़ते थे, वह मुगल या ब्रिटिश काल के दुर्भिक्ष से अलग थे, क्योंकि मुगलकाल में जो दुर्भिक्ष पड़े उनका प्रमुख कारण जनसंख्या की अधिकता और बाढ़ इत्यादि थे। जबकि कुषाण काल में दुर्भिक्ष वर्षा न होने की स्थिति में हुए अर्थात् प्रशासन का संबंध अधिक मानवीय था।

सिंचाई के लिए महावग्ग [6] और चुल्लवग्ग [7] में जानकारी मिलती है कि जल-

---

1. जातक-1, पृष्ठ संख्या 212
2. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 117,9
3. महाभारत, शांतिपर्व, 137,24
4. जातक-2, पृष्ठ संख्या 367
5. अर्थशास्त्र, 2,1
6. महावग्ग ,8,12,1-2
7. चुल्लवग्ग, 7,1,2

अभियन्ताओं ने किस प्रकार नई कार्य योजना प्रचलित की। जातकों से स्पष्ट है कि जनता ने सहकारिता के आधार पर नहरें व तालाब बनवायें। महाभारत [1] और रामायण [2] से भी ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य भी सिंचाई के लिए तालाब और नहरें बनवाना अपना कर्त्तव्य समझने लगा था। अर्थशास्त्र में भी अच्छा प्रशासन उसे कहा गया है जिसमें किसान खेती के लिए केवल वर्षा पर आश्रित न रहे।[3] मेगस्थनीज ने भी लिखा है कि सरकारी अधिकारी सिंचाई की नालियों का निरीक्षण करते थे। इसी प्रकार का विधान मनु ने भी किया है।[4]

कनिष्क द्वितीय के आरा अभिलेख में उल्लेख है कि दसफोठ नामक व्यक्ति ने जनसाधारण की भलाई के लिए एक कुंआ खोदवाया और राजा ने उसके लिए एक लाख सिक्कों का दान दिया। गाथासप्तशती से ज्ञात होता है कि सबसे पहले रहठ का प्रयोग सिंचाई के लिए इस काल में किया गया।[5] अत: रामायण, महाभारत और जातक से कुषाण काल की दुर्भिक्ष एवं सिंचाई पर प्रकाश पड़ता है।

वन-उपवन

बड़े नगरों में कुछ वन-उपवन आमोद-प्रमोद और आध्यात्मिक शान्ति के उपयोग में आते थे। बौद्धकाल में श्रावस्ती के जेतवन, राजगृह के आम्रवन और विशाखा का आराम वन इसी प्रकार के उपवन थे। अर्थशास्त्र में जंगलों की तीन श्रेणियों का उल्लेख है-शिकार के जंगल, वन्य वस्तुओं के जंगल और हाथियों के जंगल।[6] अत: ऐसा अनुमान है कि वन-उपवन की यह परिपाटी कुषाण काल तक भी प्रचलित थी।

पशुपालन

कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मनुस्मृति, महाभारत और रामायण में पशुपालन को कृषि के बराबर का महत्व दिया गया। मेगस्थनीज के अनुसार हाथी और घोड़े पालने का

---

1. महाभारत, सभापर्व, 5,77
2. रामायण ,अयोध्याकाण्ड, 100,45
3. अर्थशास्त्र, 6,1
4. मनुस्मृति, 9,279
5. गाथासप्तशती, 10,59
6. अर्थशास्त्र, 2,6

अधिकार राजा का था। महाभारत के वर्णन से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।[1] अत: कुषाण काल में भी ऐसी परिपाटी का ख्याल रखा गया,ऐसा अनुमान है। **शिल्प-उद्योग**

शिल्प और उद्योग में जो प्रमाण सिंधु घाटी सभ्यता से मिले हैं,वे सारे उद्योग उत्तरोत्तर युग में बढ़ते चले गये और आज भी दिखते हैं। कुषाण काल में धातु उद्योग में लोहा,सोना,ताँबा,कांसा इत्यादि का खनन से लेकर वस्तु निर्माण तक की विधियाँ दिखती हैं। कुषाण शासक सोने के सिक्के बनाते थे,उसके लिए अवश्य ही विदेशों से सोना मँगाते होगें। अर्थशास्त्र में सिक्कों के बनाने की मजदूरी अलग-अलग सिक्कों के अनुसार लिखी है। पेरिप्लस से ज्ञात होता है कि ताँबा भड़ौच से विदेशों को भोजा जाता था।[2] चरकसंहिता में पीतल के लिए रीति शब्द का प्रयोग किया गया।[3] तक्षशिला में ताँबे और कांसे के औजार,बर्तन,आभूषण,मूर्तियाँ और कुछ अन्य वस्तुएँ भी पाई गयीं। प्लिनी के अनुसार मोती निकालने का शिल्प भी विकसित था।

चीन के रेशमी कपड़े मौर्य काल से ही चिनावसूक के नाम से जाने जाते थे और पत्थर की मूर्तिकला में गंधार कला विशेष रूप से कुषाण काल में उल्लेखनीय है। गंधार कला के अन्तर्गत काले स्लेटी पाषाण,चूने तथा पकी मिट्टी की बुद्ध तथा बोधिसत्वों की विभिन्न मुद्रा में मूर्तियाँ बनाई गयी अर्थात् कुषाण शासकों के राज्य काल में बुद्ध और बोधिसत्वों की अनेक मूर्तियाँ बनाई गई,जिनका बाह्य रुप तो विदेशी था,परन्तु अन्तरात्मा पूर्णतया भारतीय थी। बुद्ध की तपस्या युक्त मूर्ति गंधार कला की सर्वोच्च नमूनों में से एक है। कुछ मूर्तियों में सिर पर घुंघराले बाल दिखाये गये हैं। गंधार कला में हारिती और रोमा देवियों की मूर्तियाँ भी बनाई गयीं। कुषाण काल में मथुरा भी कला का केन्द्र था। मथुरा के शिल्पियों ने बुद्ध और बोधिसत्वों के अलावा हिन्दू और जैन मूर्तियों को भी बनाया। तीर्थंकर की प्रतिमाओं पर श्रीवत्स का चिन्ह अंकित है। मथुरा की कला कृतियों में विदेशी प्रभाव नहीं है,उसमें भरहुत और साँची की प्राचीन परम्पराओं को अछून्न रखा गया है। अत: पेरिप्लस,चरकसंहिता और प्लिनी के विवरण से कुषाणकालीन शिल्प-उद्योग पर भी प्रकाश पड़ता है।

---

1. महाभारत ,अनुशासनपर्व ,102,13
2. पेरिप्लस,पृष्ठ संख्या 36
3. चरकसंहिता,3,4

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था में कृषि, दुर्भिक्ष-सिंचाई, वन-उपवन, पशुपालन और शिल्प-उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान था

✷

अध्याय-6

सिक्का

कुषाण काल में रोम तथा अन्य पाश्चात्य देशों के साथ भारत का व्यापारिक संपर्क बढ़ गया था। व्यापारिक लेन-देन के लिए मुद्राओं की पहले से ही एक सुदृढ़ परिपाटी चली आ रही थी,जिसमें आहत मुद्राओं से लेकर इण्डो-बैक्ट्रीयन शासकों की मुद्राएँ शामिल थीं। कुषाण राजाओं ने भी निश्चित माप के सिक्के तत्कालीन आवश्यकता के अनुसार ढाले। कुषाण राजाओं ने विभिन्न स्वर्ण,ताम्र एवं रजत सिक्कों का प्रचलन करवाया।

कुषाण वंश के संस्थापक कुजुल कडफिसेस के केवल तांबे के सिक्के ही पाये गये। मार्शल को तक्षशिला की खुदाई से उसके बहुसंख्यक सिक्के मिले हैं। ये दो प्रकार के हैं। पहले प्रकार के सिक्के में काबुल के यवन नरेश हर्मियस व कुजुल कडफिसेस का पता चलता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कुजुल हर्मियस के अधीन रहा होगा। इसके मुखभाग(Obverse)पर लिखा है ' बेसिलियस बेसिलिन हरमेआय ' तथा पृष्ठभाग(Reverse)पर खरोष्ठी लिपि में लिखा है ' कुजुल कसस कुषाण युवगस ।'

कुजुल ने स्वतन्त्र शासक बनने के बाद ,जो दूसरे प्रकार के सिक्के चलाये उसके मुखभाग पर यूनानी भाषा में ' कोजोलौ कैडफिजाय 'लिखा है तथा पृष्ठभाग पर खरोष्ठी लिपि में ' कुजुल कसस कुसान यवुगस धर्मठिदस ' लेख है [1], अर्थात् धर्म में स्थित लिखा है। शायद कुजुल ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था। उसके तांबे के सिक्कों का वजन 30 ग्रेम के लगभग है।

सबसे पहले सोने का सिक्का विम कडफिसेस ने जारी किया था।[2] इसके साथ-साथ रजत तथा ताम्र के सिक्के भी इसने जारी किये। यद्यपि स्वर्ण सिक्कों की संख्या अधिक है। विम ने दिनार,दो दिनार और पाद दिनार,इन तीन मूल्यों में स्वर्ण मद्राओं का निर्माण कराया था। इसके मुखभाग पर टोपधारी राजा की आकृति है तथा दायें हाथ में बज्र और कन्धे से अग्नि की लपटे निकल रही हैं। यूनानी भाषा में मुद्रा लेख ' सिलियस बेसिलियन आमो कडफिसेस ' भी है तथा पृष्ठभाग पर त्रिशूलधारी शिव की

1. आनन्द शंकर सिंह-प्राचीन भारत की मुद्राएँ,इलाहाबाद, 1995,पृष्ठ संख्या 66
2. वही,पृष्ठ संख्या 69

आकृति है और खरोष्ठी लिपि में मुद्रा लेख ' महरजस रजदिरजस सर्वलोग ईश्वरस महिश्वरस विम कडफिशस त्रतरस ' है। विम के काल में भारत का व्यापार बढ़ा-चढ़ा था और रजत मुद्राओं में मिलावट अधिक होने लगी थी। इसलिए उसने स्वर्ण मुद्राओं का प्रवर्तन किया था। विम के स्वर्ण मुद्राएँ 242 ग्रेन की हैं, जबकि 20 ग्रेन का भी एक सिक्का पाया गया है।

विम के तांबे के सिक्के भी मिलते हैं,जो 270 ग्रेन वजन के हैं। इसके मुखभाग पर राजा की खड़ी मूर्ति बनी है,जो वेदी पर आहुति दे रहा है और उसके बायीं ओर त्रिशूल की आकृति तथा मुद्रा लेख ' बेसिलियस बेसिलियन सोटर मेगास वोमो कैडफिसेस ' अंकित है। पृष्ठभाग पर शिव की आकृति है। दाहिने हाथ में त्रिशूल है और बायां हाथ नंदी के ऊपर टीका है।

विम के रजत सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। इस पर राजा की खड़ी मूर्ति है। वह टोप,कुर्ता,कोट,पायजामा धारण किये हुए हैं,सामने वेदि तथा त्रिशूल है। उसके दाहिने हाथ के पीछे गदा है और बाएं हाथ में पात्र है। यह चांदी का सिक्का वर्तमान ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है। विम के सिक्कों पर उत्कीर्ण चिन्ह पूर्णत: भारतीय हैं और शिव,नंदी तथा त्रिशूल की आकृतियों से उसका शैव मतानुयायी होना लगता है।

कनिष्क के सोने और तांबे के सिक्के भारत के विभिन्न प्रदेशों (पश्चिमोत्तर प्रदेश , पंजाब, उत्तर-प्रदेश,बिहार,बंगाल तथा उड़ीसा के विभिन्न स्थानों)से पाये गये हैं। इसके सुवर्ण सिक्के 124 ग्रेन के हैं,जो तौल में रोमन सिक्कों के बराबर हैं। इसके मुखभाग पर राजा की खड़ी आकृति है, जो लंबा कोट,पायजामा और नुकीली टोपी पहने हुए है। उसके बांये हाथ में माला है और वह दाहिने हाथ से हवन कुण्ड में आहुति दे रहा है। जिस पर यूनानी लिपि में लेख ' शाओ नानो शाओ कनिष्की कोशानो ' अंकित है।[1] पृष्ठभाग पर यूनानी,भारतीय और ईरानी देव-समूह तथा उनका नाम अंकित है,जैसे-मिइरो (सूर्य) , मेओ(चन्द्रमा)आदि। कुछ सिक्कों के पृष्ठभाग पर ओइसो(शिव)अंकित है और चतुर्भुजी शिव की आकृति भी है,हाथ में त्रिशूल,बकरा,डमरू तथा अंकुश है। किसी-किसी सिक्कों पर प्रभामण्डल युक्त खड़ी मुद्रा में बुद्ध की प्रतिमा है और इसके नीचे बोडो लिखा है।

कनिष्क के ताम्र सिक्के गोलाकर हैं। मुखभाग पर कनिष्क की आकृति है और

---

1. आनन्द शंकर सिंह-प्राचीन भारत की मुद्राएँ,इलाहाबाद ,1995,पृष्ठ संख्या 72

मुद्रा लेख ' बेसिलियस बेसिलियन ' उत्कीर्ण है। यह यूनानी उपाधी है। इसका अर्थ है राजाओं का राजा। पृष्ठभाग पर यूनानी,ईरानी और भारतीय देवी-देवता अंकित हैं। इसके तांबे के सिक्कों का भार 68 ग्रेन है। गार्डनर के अनुसार कनिष्क के कुछ कांसे के सिक्के भी पाए गए हैं, जिन पर राजा की आकृति और देवी-देवताओं के अंकन हैं।

हुविष्क ने स्वर्ण और ताम्र सिक्कों का प्रचलन करवाया। उसके स्वर्ण सिक्कों के मुखभाग पर राजा के आधे शरीर की आकृति बनी है। उसके दाएं हाथ में दण्ड और बांये हाथ में अंकुश है। राजा गोलाकार टोप और अलंकृत कोट पहने हुए है। इसके मुद्रा लेख में ' शाओ नानो शाओ ओवेश्की कुषानों ' अंकित है।[1] पृष्ठभाग पर विभिन्न देवी-देवताओं की आकृतियाँ तथा यूनानी लिपि में उनके नाम मिलते हैं। इसके स्वर्ण सिक्के वजन में कनिष्क के स्वर्ण सिक्कों के बराबर हैं अर्थात् लगभग 124 ग्रेन के हैं।

तांबे के सिक्कों के मुखभाग पर राजा अंकुश और भाला के साथ हाथी पर सवार है और कुछ सिक्कों पर पलंग पर बज्र आसन में राजा बैठा है और पृष्ठभाग पर विभिन्न देवी-देवताओं की आकृतियाँ हैं। इसके सिक्को पर बुद्ध,शिव के अतिरिक्त विष्णु,महासेन,कुमार,विशाख,उमा आदि का अंकन मिलता है। जबकि हुविष्क के रजत सिक्के भी प्राप्त हुए हैं,जिसमें ईरानी वेशभूषा में राजा की आकृति बनी हुई है।

वासुदेव के सोने तथा तांबे के सिक्के मिले हैं। सभी गोलाकार हैं और वजन में रोम के सिक्के के बराबर(लगभग 124 ग्रेन)हैं। जिस पर राजा की खड़ी आकृति है,जो टोप और पायजामा पहने है। उसके बाएं हाथ में त्रिशूल और दायें हाथ में अग्निकुण्ड है। मुद्रा लेख में ' शाओ नानो शाओ बोजैडो वासुदेव कोशानों ' अंकित है। पृष्ठभाग पर त्रिशूल तथा पाश लिए दो हाथ वाले शिव हैं।

कुछ तांबे के सिक्कों पर देवी सिंहासन पर बैठी है। उसके दाए हाथ में फीता(Fillet)है और बाए हाथ में कार्नकोपिया(समृद्धि शृंग)बना है। कुछ तांबे के सिक्को पर ब्राह्मी लिपि में वासु उत्कीर्ण है। अल्तेकर ने वासुदेव के एक नए सिक्के का उल्लेख किया है,जिसके पृष्ठभाग पर शिव और हाथी का चित्र अंकित है। शायद यह गजासुर-वध का चित्रण है।

परवर्ती कुषाण राजाओं के दो प्रकार के सिक्के मिलते हैं,एक में शिव और नंदी तथा दूसरे में सिंहासनासीन देवी का चित्रण है। देवी के सिक्कों का अनुकरण

---

1. आनन्द शंकर सिंह-प्राचीन भारत की मुद्राएँ,इलाहाबाद ,1995,पृष्ठ संख्या 74

गुप्तकाल में लक्ष्मी के रूप में किया गया है। इस प्रकार कुषाण मुद्राओं ने भारत में मुद्राओं के लिए एक नवीन सूत्रपात किया और परवर्ती युगों के लिए मुद्रा का प्रतिमान(Standerd)स्थापित किया।

✷

उपसंहार

कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था के अध्ययन से भारत की सम्पन्नता का पता चलता है। विदेशी होते हुए भी कुषाणों ने तत्कालीन समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय धर्म बौद्ध धर्म को प्रश्रय दिया, जो कनिष्क के काल में चतुर्थ चर्मोत्कर्ष(चतुर्थ बौद्ध संगीति कश्मीर के कुण्डलवन में हुआ था, जिसके अध्यक्ष वसुमित्र और उपाध्यक्ष अश्वघोष थे)को प्राप्त हुआ। कनिष्क ने बौद्ध धर्म की महायान शाखा को राज्याश्रय प्रदान किया तथा उसका मध्य एशिया एवं चीन में प्रचार करवाया। कनिष्क के काल में महाविहार और स्तूप विदेशियों को आश्चर्यचकित कर देते थे। मध्य एशियाई चीन के रेशम मार्ग पर अधिपत्य होने के कारण कुषाणों ने भौतिक समृद्धि का भी चरमोत्कर्ष देखा। कनिष्क के शासन काल में उसके साम्राज्य में भारत के विभिन्न प्रान्तों के लोग सुखमय जीवन व्यतीत करते थे और उसके सिक्के विभिन्न प्रान्तों से पाए गए, जो कि अखण्ड आर्थिक साम्राज्य का द्योतक है।

यदि मौर्य साम्राज्य में हमें साम्राज्यों की नई सीमाओं का पता चलता है , धर्म और राज्य विधाओं का पता चलता है, तो कुषाण साम्राज्य में लौकिक और धार्मिक सुखो के प्रभुत प्रमाण मिलते हैं। गंधार कला से यह पता चलता है कि लोगों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी और स्वास्थ्य तथा धार्मिक आचरण से संबंधित उनकी कलात्मक रूचि भी सम्पन्न थी। सोने के सिक्के चलाने का प्रतिमान भी कुषाणों ने शुरू किया, जो उनके आर्थिक समृद्धि का ही द्योतक माना जाएगा और इस काल में चरक, सुश्रुत ने चिकित्सा विज्ञान में वो कीर्तिमान स्थापित किये, जिन पर कि आज भी अनुसंधान चल रहा है। जीवन को निरोगी और सुखमय बनाने के लिए जिस चिकित्सकीय ज्ञान की आवश्यकता होती है उसके लिए आर्थिक सम्पन्नता होना जरूरी है। इसके लिए इन दोनों विद्वानों के कारण ही कुषाणकालीन आर्थिक सम्पन्नता सफल हुई। यद्यपि कुषाण युग में धार्मिक मत-मतान्तर थे। फिर भी जनसामान्य के जीवन का आधार पुरूषार्थ(धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)था, जो आज भी है। इन पुरूषार्थों में अर्थ ही एक मात्र पुरूषार्थ है, जिसके ऊपर धर्म, काम एवं मोक्ष तीनों टिके हैं।

अश्वघोष, वसुमित्र जैसे धार्मिक आचार्य के कारण अधिकांश जनता बौद्ध धर्म में अनुप्रणीत रही और बौद्ध मत मध्य एशिया के दूर-दराज इलाको तक फैला हुआ

था तथा चरक व सुश्रुत जैसे चिकित्सक मनुष्य के रोग रूपी शत्रुओं से लड़ रहे थे। कुशल शिल्पी और कारीगर शास्त्रार्थ के साधन और दैनिक उपयोग की वस्तुएँ बना रहे थे तथा उपयोग की वस्तुओं का आदान-प्रदान भी कर रहे थे। ये सब कुषाण राज्य के दृढ़ राजनीतिक अवस्था के कारण ही सम्भव हुआ।

अत: यह कहा जा सकता है कि सुदृढ़ अर्थव्यवस्था ने सम्पन्नता का वह दौर शुरू किया,जिसमें धार्मिक वैमनस्यता के उगने की गुंजाइश ही नहीं रही और कुषाण काल ने सम्पूर्ण रूप से गुप्त काल के लिए स्वर्ण युग का आधार प्रस्तुत कर दिया। इसलिए कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था का इसी दृष्टिकोण से अनन्य और महत्वपूर्ण स्थान भारतीय इतिहास में सुशोभित होता है।

✷

परिशिष्ट-1

कुषाण काल का संक्षिप्त इतिहास
(15 ई. से 230 ई.तक)

कुषाण वंश का प्रारम्भिक शासक कुजुल कडफिसेस(15-65 ई.)था। इसके बाद विम कडफिसेस(65-78 ई.)शासक बना। इसी ने सर्वप्रथम सोने का सिक्का चलवाया था और विम के बाद कनिष्क(78-101 ई.)शासक बना। कनिष्क इस वंश का सबसे महत्वपूर्ण शासक था। कुषाण काल के संक्षिप्त इतिहास के अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं का अति संक्षिप्त अध्ययन किया गया है, जो इस प्रकार है-कुषाण काल के इतिहास का साधन,कुषाणों की उत्पत्ति एवं प्रसार,प्रारम्भिक कुषाण शासक(कुजुल और विम),कुषाण शक्ति का चरमोत्कर्ष(कनिष्क,कनिष्क का युद्ध एवं विजय,कनिष्क का साम्राज्य,कनिष्क का शासन,कनिष्क का धर्म और कनिष्क का मूल्यांकन),कनिष्क का उत्तराधिकारी (वासिष्क,हुविष्क,कनिष्क द्वितीय, वासुदेव),परवर्ती कुषाण शासक(कनिष्क तृतीय, वासुदेव द्वितीय),कुषाणकालीन सामाजिक जीवन,कुषाणकालीन आर्थिक समृद्धि,कुषाणकालीन साहित्यिक प्रगति,कुषाणकालीन स्थापत्य एवं कला(गंधार और मथुरा)और कुषाण साम्राज्य के पतन के कारण आदि।

1.कुषाण काल के इतिहास का साधन

कुषाण वंश का प्रारम्भिक इतिहास जानने के लिए हमें मुख्यत: चीनी स्रोतों पर ही निर्भर होना पड़ता है। चीनी ग्रंथों में पान-कु(pan-ku)द्वारा रचित सिएन-हान-शू (Tsien-Han-Shu)और फान-ए(Fan-ye)द्वारा रचित हाऊ-हान-शू(Hou-Han-Shu)महत्वपूर्ण है। इन दोनों ग्रंथों से कुजुल कडफिसेस व विम कडफिसेस के बारे में सूचना मिलती है। कुषाण वंश के प्रथम दो शासकों के इतिहास का अध्ययन हम उपर्युक्त चीनी ग्रंथों के अतिरिक्त पहलव शासक गोण्डोफर्नीज के तख्तेबाही अभिलेख तथा इन (कुजुल व विम)राजाओं द्वारा प्रचलित सिक्कों के आधार पर भी होता है।

पान-कु के ग्रंथ से हन वंश का इतिहास (24 ई.पू. तक)तथा फान-ए के ग्रंथ से परवर्ती हन वंश के इतिहास की जानकारी मिलती है। पान-कु के ग्रंथ से यू-ची जाति के हुण,शक तथा पार्थियन राजाओं के साथ संघर्ष का विवरण मिलता है तथा ज्ञात होता

है कि यू-ची जाति पाँच कबीलों में विभक्त (हिऊमी, शु-आंग-मी, कुई-शुआंग (कुषाण)हि-तुन, काओ-फु)थी।

फान-ए के ग्रंथ से परवर्ती हन वंश (यू-ची जाति का इतिहास, 25 ई.से 125 ई.तक)के इतिहास की जानकारी मिलती है। इससे पता चलता है कि यू-ची कबीला कुई-शुआंग(कुषाण)सबसे शक्तिशाली था, जिसके सरदार कुजुल कडफिसेस ने अन्य कबीलों को जीतकर एक शक्तिशाली राज्य का निर्माण किया था।

कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारियों का इतिहास हमें मुख्य रुप से तिब्बती बौद्ध स्त्रोतों, संस्कृत बौद्ध ग्रंथों के चीनी अनुवाद(श्रीधर्मपीटकनिदानसूत्र, संयुक्तरत्न पीटक तथा कल्पनामण्डिटीका)तथा चीनी यात्रियों फाहियान एवं व्हेनसांग(सियुकी)के विवरण से ज्ञात होता है।

कौशाम्बी, सारनाथ, मथुरा, सुई विहार, जेदा(उन्द, पेशावर)आदि स्थानों से कनिष्क के लेख मिलते हैं। उसके उत्तराधिकारी हुनिष्क तथा कनिष्क द्वितीय के लेख क्रमश: मथुरा तथा आरा(अटक)से मिलते हैं।

अभिलेख तथा सिक्कों के प्रसार से जहाँ एक ओर उनका साम्राज्य विस्तार सूचित होता है, वहीं दूसरी ओर राज्य की आर्थिक समृद्धि तथा धर्म के विषय में भी जानकारी मिलती है। चीनी यात्री फाहियान तथा व्हेनसांग के विवरणों से भी कनिष्क के इतिहास पर कुछ प्रकाश पड़ता है।

उपर्युक्त स्त्रोते के अतिरिक्त तक्षशिला(पाकिस्तान)तथा बेग्राम (अफगानिस्तान) से की गई खुदाइयों से भी कुषाण इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए उपयोगी सामग्रियाँ मिल जाती हैं। तक्षशिला की खुदाई 1915 ई. में सर जान मार्शल द्वारा करवायी गयी थी। यहाँ से कुषाणकालीन सिक्के तथा स्मारक मिलते हैं। इन्हीं के आधार पर यह निश्चित करने में सहायता मिलती है कि कनिष्क कुल ने कडफिसेस कुल के बाद शासन किया था। बेग्राम का उत्खनन हाकिन तथा धिर्शमन ने करवाया था। यहाँ से कनिष्क, हुविष्क तथा वासुदेव के सिक्के प्राप्त हुए हैं।

2.कुषाणों की उत्पत्ति एवं प्रसार

कुषाणों की उत्पत्ति तथा उनकी राष्ट्रीयता का प्रश्न एक विवाद का विषय है। कुषाण यू-ची जाति की एक शाखा थे(कुई-शुआंग)। यू-ची लोग प्रारम्भ में चीन के सीमावर्ती प्रदेशों में कानसू तथा निंग-सिया में निवास करते थे। 165 ई.पू. के लगभग

हूण नामक एक अन्य पड़ोसी जाति द्वारा पराजित हुए और अपना मूल निवास स्थान छोड़ने पर बाध्य हुए।

यू-ची अपने मूल निवास स्थान से दक्षिण -पश्चिम की ओर जाते हुए इली नदि घाटी में निवास करने वाली वु-सुन(Wu-Sun)नामक एक अन्य जाति को पराजित कर उनके राजा की हत्या कर दी। पराजित वु-सुन जाति ने उत्तर की ओर भाग कर हूण राज्य में शरण लिया। इसके बाद यू-ची लोग और आगे पश्चिम की ओर बढ़े और दो शाखाओं में बट गए-

i. छोटी शाखा

ii. मुख्य शाखा-यह दक्षिण-पश्चिम में आगे बढ़ती हुई सीर दरया घाटी में रहने वाली शक जाति से जा टकराई और शकों को खदेड़ दिया तथा वहाँ रहने लगी।

परन्तु सीर दरया घाटी में यू-ची लोग अधिक दिन तक नहीं रह सके,क्योंकि वु-सुन जाति ने मृत राजा के पुत्र के नेतृत्व में हूणों की सहायता से यू-ची जाति को परास्त कर दिया। जिससे यू-ची सिर दरया घाटी छोड़ने पर बाध्य हुए। यहाँ से वे सूदूर पश्चिम की ओर बढ़ते हुए ताहिया(बैक्ट्रिया)पहुँचे और ताहिया के निवासियों को परास्त कर उन्हें अपने अधीन कर लिया। यू-ची ने यहाँ अपना राज्य स्थापित किया तथा आक्सस नदी के उत्तर में आधुनिक बोखारा(प्राचीन सोग्डियाना) को अपनी राजधानी बनाया।

चीनी इतिहासकार पान-कू(जिसने 24 ई. पू. तक का प्रथम हन वंश का इतिहास लिखा है)के विवरण से ज्ञात होता है कि अब यू-ची लोग खानाबदोश न रहे और उनका साम्राज्य पाँच प्रदेशों में विभक्त हो चुका(हिऊमी,शु-आंग-मी,कुई-शुआंग(कुषाण),हि-तुन,काओ-फु) था। फान-ए द्वारा लिखे गए परवर्ती हन वंश के इतिहास से पता चलता है कि इस विभाजन के 100 वर्षों के बाद कुई-शुआंग के सरदार क्यु-त्सियु-क्यों(Kieou-tsion-Kio)ने अन्य चारों राज्यों को विजित कर उन्हें एक शक्तिशाली राजतंत्र के अन्तर्गत संगठित कर दिया तथा स्वयं राजा बन बैठा। क्यु-त्सियु-क्यों का समीकरण कुजुल से किया जाता है,जो कडफिसेस प्रथम की एक उपाधि थी। अत: कुषाण शाखा का यह राजा कुजुल कडफिसेस अथवा कडफिसेस प्रथम ही था। इस शाखा के राजाओं ने भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

3.प्रारम्भिक कुषाण शासक

i.कुजुल कडफिसेस(15-65 ई.)

इसने पार्थियनों पर आक्रमण कर काबुल पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार

वह भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश का शासक बन गया। इसके दो प्रकार के सिक्के (तांबे) मिलते हैं,जिनका वजन 30 ग्रेन के लगभग है। प्रथम प्रकार के सिक्के के मुखभाग पर काबुल के अंतिम यवन शासक हर्मियस का नाम यूनानी लिपि में तथा पृष्ठभाग पर कुजुल का नाम खरोष्ठी लिपि में खुदा हुआ है। दूसरे प्रकार के सिक्कों पर उसकी राजकीय उपाधियाँ उत्कीर्ण हैं। इस आधार पर ऐसा निष्कर्ष निकाला जाता है कि प्रारम्भ में कुजुल यवन शासक हर्मियस के अधीन शासक था,परन्तु बाद में स्वतंत्र हो गया।

हर्मियस के बाद काबुल क्षेत्र में पहलवों की सत्ता कायम हुई। ऐसा लगता है कि पहलवों को परास्त कर ही कुजुल ने काबुल तथा कांधार पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार कुजुल के समय में कुषाण साम्राज्य के अन्तर्गत सम्पूर्ण अफगानिस्तान तथा गंधार के प्रदेश सम्मिलित हो गए थे। उसका शासन काल 15 ई.से 65 ई.के बीच माना जाता है। उसकी मृत्यु 80 वर्ष की दीर्घायु में हुई थी।

ii.विम कडफिसेस(65-78 ई.)

कुजुल की मृत्यु के बाद विम राजा हुआ। उसने तिएन-चू की विजय की तथा वहाँ अपने एक सेनापति को शासन करने के लिए नियुक्त किया। तिएन-चू का समीकरण सिंधु द्वारा सिंचित पंजाब क्षेत्र से स्थापित किया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम विम के समय में ही भारत में कुषाण सत्ता स्थापित हुई थी।

विम ने स्वर्ण तथा ताँबे के सिक्के खुदवाये थे। स्वर्ण मुद्राएँ 242 ग्रेन की हैं और तांबे की 270 ग्रेन तक की हैं। इन पर यूनानी तथा खरोष्ठी, दोनों लिपियों में लेख मिलते हैं। सिक्कों का विस्तार पश्चिम में आक्सस-काबूल घाटी से लेकर पूर्व में सम्पूर्ण सिंध क्षेत्र तक है।

सिक्कों पर शिव,नंदी तथा त्रिशुल की आकृतियाँ मिलती हैं। इससे उसका शैव मतावलम्बी होना भी सूचित होता है। उसके विशुद्ध स्वर्ण सिक्कों से साम्राज्य की समृद्धि एवं सम्पन्नता सूचित होती है। प्लिनी के विवरण से पता चलता है कि उसके समय मे भारत तथा रोम के व्यापारिक संबंध अत्यन्त विकसित थे। चीन के साथ भी उसका व्यापारिक संबंध था। इसका समय 65 ई.से 78 ई.तक है।

4.कुषाण शक्ति का चरमोत्कर्ष

कुषाण शक्ति को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने वाला शासक कनिष्क था,जो इस वंश का सबसे महत्वपूर्ण शासक था।

कनिष्क(78-101 ई.)

विम के पश्चात् कुषाण शासन की बागडोर कनिष्क के हाथों में आयी। कनिष्क निश्चित रुप से भारत के कुषाण राजाओं में सबसे महान है। उसके लगभग बारह अभिलेख तथा बहुसख्यंक स्वर्ण एवं ताम्र मुद्राएँ प्राप्त हैं। बौद्ध साहित्य,अभिलेख तथा सिक्कों के आधार पर हम उसके इतिहास का पुनर्निर्माण करते हैं।

कनिष्क की उत्पत्ति,वंश तथा प्रारम्भिक जीवन अंधकारपूर्ण है। स्टेनकोनों कनिष्क को यू-ची जाति की छोटी शाखा का बताते हैं,किन्तु चीनी ग्रंथों ने कनिष्क के वंशज वासुदेव को बड़ी शाखा का शासक बताया है। इस प्रकार कनिष्क की उत्पत्ति तथा वंश परम्परा पूर्णतया अनुमानपरक ही है। कनिष्क 23 वर्ष तक राज्य किया अर्थात् 78 ई.से 101 ई.तक और 101 ई.में उसकी मृत्यु हो गयी।

i.युद्ध एवं विजयें

कनिष्क एक महान विजेता था,जिसने कडफिसेस साम्राज्य को बहुत अधिक विस्तृत किया। उसके द्वारा किए गए युद्ध और विजयें निम्नलिखित हैं-

A. पूर्वी भारत की विजय

B. चीन के साथ युद्ध

C. पश्चिमोत्तर प्रदेशों की विजय

D. दक्षिण भारत

A. वाराणसी के पास सारनाथ से कनिष्क के शासन के तीसरे वर्ष का अभिलेख प्राप्त हुआ है। बिहार तथा उत्तर बंगाल से उसके शासन काल के बहुसंख्यक सिक्के मिलते हैं। श्रीधर्मपिटकनिदानसूत्र के चीनी अनुवाद से पता चलता है कि कनिष्क ने पाटलिपुत्र के राजा को परास्त कर के एक बड़ी रकम की मांग की , परन्तु इसके बदले में वह अश्वघोष लेखक,बुद्ध का भिक्षा-पात्र तथा एक अद्भुत मुर्गा पाकर ही सन्तुष्ट हो गया। वैशाली से भी कुषाण सिक्के मिले हैं। बोधगया से हुविष्क के समय का मृण्मूर्तिफलक मिला है। ये सब बिहार पर कनिष्क के अधिकार की पुष्टि करते हैं। बिहार के आगे बंगाल के ताम्रलिप्ति(तामलुक)तथा महास्थान से कनिष्क के सिक्के मिलते हैं।

हाल ही में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (वाराणसी)के डॉ.बी.पी.सिंह के निर्देशन में बलिया जिले के खैराडीह नामक स्थान पर खुदाई की गयी ,जिसके परिणामस्वरुप एक अत्यन्त समृद्धशाली कुषाणकालीन बस्ती का पता चला है। घाघरा नदी के तट पर

स्थित यह स्थल (नगर)एक प्रमुख व्यापारिक स्थल रहा होगा। इससे भी पूर्वी उत्तर-प्रदेश पर कुषाणो का अधिपत्य प्रमाणित होता है और यह कनिष्क के काल में ही संभव हुआ होगा।

B. चीनी तुर्किस्तान(मध्य एशिया)के प्रश्न पर कनिष्क तथा चीन के बीच युद्ध छिड़ा। चीनी स्रोतों से ज्ञात होता है कि 73 ई.से 94 ई.के बीच चीनी सेनापति पानचाऊ अपने हनवंशी नरेश के आदेशों पर चीनी तुर्किस्तान पर अपना अधिपत्य कायम किया। चीनी तुर्किस्तान से तात्पर्य यारकन्द,खोतान तथा काशगर से है। लगभग 88-90 ई.में कनिष्क ने सत्तर हजार अश्वारोहियों की एक विशाल सेना सुंग-लिन पर्वत के पार चीनियों से युद्ध के लिए भेजा,परन्तु यह सेना पानचाऊ द्वारा पराजित हुई। जबकि चीनी इतिहासकार युद्ध का कारण यह बताते हैं कि कनिष्क ने सेनापति पानचाऊ के पास हन राजकुमारी से विवाह का प्रस्ताव भेजा,जिसे पानचाऊ ने अस्वीकार कर दिया। इसी कारण युद्ध हुआ और कनिष्क पराजित हुआ।

परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कनिष्क ने शीघ्र ही अपनी पराजय का बदला ले लिया। व्हेनसांग हमें बताता है कि गंधार प्रदेश के राजा कनिष्क ने प्राचीन काल में सभी पड़ोसी राज्यों को जीतकर एक विस्तृत प्रदेश पर शासन किया। सुंग-लिन पर्वत के पूर्व में भी उसका अधिकार था। यहाँ सुंग-लिन के पूर्व के प्रदेश से तात्पर्य चीनी तुर्किस्तान से ही है,जिसमें यारकन्द,खोतान तथा काशगर सम्मिलित थे।

चीनी तुर्किस्तान के अतिरिक्त बैक्ट्रीया,ख्वारिज्म तथा तुखारा पर भी कनिष्क का अधिकार था।

C. कनिष्क के शासन काल के 11वें वर्ष का एक अभिलेख सुई विहार से मिला है,जो स्पष्ट करता है कि कनिष्क ने अपने शासन के 11 वें वर्ष में निचली सिंधु घाटी को जीत लिया था। कपिशा में कनिष्क के अधिकार की पुष्टि व्हेनसांग करता है। काबुल के वार्दाक से शक संवत् 151 तिथि वाला हुविष्क का एक लेख मिला है,जो अफगानिस्तान के ऊपर कुषाण सत्ता को प्रमाणित करता है। यह विजय भी कनिष्क के समय में ही की गयी होगी। कल्हण की राजतरंगिणी से पता चलता है कि उसका कश्मीर पर अधिकार था। इसके अनुसार कनिष्क ने यहाँ कनिष्कपुर नामक नगर बसाया था।

D. सांची में कनिष्क संवत् 28 का एक लेख मिला है। यह वासिष्क का है तथा बौद्ध प्रतिमा पर खुदा हुआ है। वासिष्क की किसी भी उपलब्धि का ज्ञान हमें नहीं है। उसका शासन मात्र चार वर्ष का था। अत: कहा जा सकता है कि यह भू-भाग(मालवा)

कनिष्क द्वारा ही विजित किया गया होगा। इससे ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि दक्षिण में कम से कम विंध्यपर्वत तक कनिष्क का साम्राज्य विस्तृत था।

ii.कनिष्क का साम्राज्य

उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में विंध्यपर्वत तक तथा पश्चिम में उत्तरी अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में पूर्वी उत्तर-प्रदेश(सारनाथ,वाराणसी,मथुरा,बलिया), बिहार(पाटलिपुत्र,वैशाली,बोधगया),बंगाल (ताम्रलिप्ति,महास्थान)तक विस्तृत था। राजतरंगिणी से जहाँ कश्मीर पर उसके अधिकार की पुष्टि होती है,वही सुई विहार तथा सांची के लेख से सिंध, मालवा, गुजरात,राजस्थान के कुछ भाग तथा उत्तरी महाराष्ट्र पर

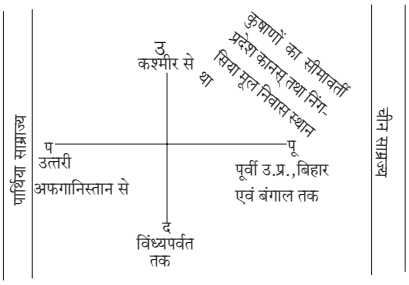

भी उसके अधिकार की पुष्टि होती है। इसी प्रकार कौशाम्बी, श्रावस्ती, सारनाथ आदि के लेख से पूर्वी (उत्तर-प्रदेश) पर उसके अधिपत्य की सूचना मिलती है। जबकि प्रतापगढ़ जिला (उत्तर-प्रदेश) में स्थित घाटमपुर टीले पर भी कुषाणकालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। इसकी खोज करने वाले पुरातत्वविद निर्झर प्रतापगढ़ी का कहना है कि यह टीला प्राचीन काल में काफी दूर तक फैला था। इसे महाभारतकालीन घटोत्कच का टीला बताया जाता है। यहाँ से *मिट्टी* की निर्मित सील,तांबे का सिक्का,एक फिट ऊचाईं की चतुर्भुजी गणेश की खण्डित प्रतिमा और भगवान विष्णु की प्रतिमा का खण्डित भाग भी मिला है। घाटमपुर, प्रतापगढ़ से बारह किमी दूर दक्षिण की दिशा में स्थित है। यद्यपि यह बताना मश्किल है कि प्रतापगढ़ के अवशेष कनिष्क के काल का है। फिर भी कुषाणों का उत्तर-प्रदेश पर आधिपत्य की सूचना मिलती ही है।[1] अत: कनिष्क का साम्राज्य एक अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्य था। इस विशाल साम्राज्य की राजधानी पुरुषपुर (पेशावर,पाकिस्तान) थी।

iii.कनिष्क का शासन

कनिष्क के शासन प्रबंध के विषय में हमें बहुत कम पता है। वह एक शक्ति सम्पन्न सम्राट था। लेखों में उसे महाराजराजाधिराजदेवपुत्र कहा गया है। देवपुत्र की उपाधि से यह पता चलता है कि वह अपनी दैवी उत्पत्ति में विश्वास करता था। यह उपाधि उसने चीनी सम्राटों के अनुकरण पर ग्रहण की। रोमन शासकों के अनुकरण पर

1. हिन्दुस्तान समाचार पत्र,वाराणसी संस्करण,15/11/07,पृष्ठ संख्या 11

कुषाण राजाओं ने भी मृत शासकों की स्मृति में मंदिर तथा मूर्तियाँ बनवाने की प्रथा का प्रारम्भ किया था। राजाधिराज की उपाधि से सूचित होता है कि कुषाण सम्राट के अधीन कई छोटे-छोटे राजा शासन करते थे।

प्रशासन की सुबिधा के लिए उसने साम्राज्य को अनेक क्षत्रपियों में विभाजित किया था। इससे स्पष्ट होता है कि वह अपने साम्राज्य का शासन क्षत्रपों की सहायता से करता था। बड़ी क्षत्रपी के शासक को महाक्षत्रप तथा छोटी क्षत्रपी के शासक को क्षत्रप कहा जाता था। सारनाथ के लेख के अनुसार मथुरा का महाक्षत्रप खरपल्लान तथा वाराणसी का क्षत्रप बनस्पर था। उत्तर-पश्चिम में लल्ल तथा लाइक उसके क्षत्रप थे। पश्चिमोत्तर भाग में कपिशा तथा तक्षशिला उसके शासन के केन्द्र रहे होगें। क्षत्रप के पद पर अधिकतर विदेशी व्यक्तियों की ही नियुक्ति होती थी।

समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति से पता चलता है कि कुषाण राज्य में विषय तथा भुक्ति जैसी प्रशासनिक इकाईयाँ होती थीं। क्षत्रपों के वेतन तथा कार्यकाल के विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। मथुरा सम्भवत: उसके शासन का मुख्य केन्द्र था तथा दूसरा प्रशासनिक केन्द्र वाराणसी में था।

कनिष्क के लेख में किसी सलाहकारी परिषद् का उल्लेख नहीं मिलता। कुषाण लेखों में हम पहली बार दण्डनायक तथा महादण्डनायक जैसे पदाधिकारियों का उल्लेख पाते हैं,जो संभवत: सैनिक अधिकारी थे। मथुरा लेख के अनुसार ग्रामों का शासन ग्रामिक द्वारा चलाया जाता था। ग्रामिक का प्रमुख कार्य राजस्व वसूल करके केन्द्रीय कोष में जमा करना होता था,किन्तु ऐसा लगता है कि कनिष्क का शासन अधिकांशत: सैनिक शक्ति पर आधारित था,इसलिए वह स्थायी नहीं हो सका।

iv.कनिष्क का धर्म

भारतीय इतिहास में कनिष्क की ख्याति उसकी विजयों के कारण नहीं,अपितु शाक्य मुनि के धर्म को संरक्षण प्रदान करने के कारण है। कनिष्क के सिक्कों तथा पेशावर के लेख के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में ही बौद्ध हो गया था। पेशावर में प्रसिद्ध चैत्य का निर्माण करवाकर उसने इस धर्म के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की। कनिष्क के समय में बौद्ध धर्म स्पष्टत: दो सम्प्रदायों(हीनयान और महायान)में विभक्त हो गया था। उसने महायान शाखा को राज्याश्रय प्रदान किया तथा उसका मध्य एशिया एवं चीन में प्रचार करवाया। उसके सिक्कों पर बुद्ध की आकृतियों के अतिरिक्त यूनानी तथा हिंदू देवी-देवताओं(चन्द्र,सूर्य,शिव)की आकृतियाँ

भी उत्कीर्ण मिलती हैं। इसके स्वर्ण सिक्कों का भार 124 ग्रेन है और ताम्बे के सिक्कों का भार 68 ग्रेन है

इसके समय में चतुर्थ बौद्ध संगीति भी कश्मीर के कुण्डलवन में हुआ था। वसुमित्र अध्यक्ष तथा अश्वघोष उपाध्यक्ष थे। पाँच सौ भिक्षुओं ने इस संगीति में भाग लिया था।

v.कनिष्क का मूल्यांकन

गंगा घाटी में एक साधारण क्षत्रप के पद से उठकर उसने अपनी विजयों द्वारा एशिया के महान राजाओं में अपना स्थान बना लिया। अशोक के समान उसने भी बौद्ध धर्म के प्रचार में अपने साम्राज्य के साधनों को लगा दिया। वह बौद्ध धर्म के साथ-साथ दूसरे धर्मों का भी सम्मान करता था। इस प्रकार कनिष्क में चन्द्रगुप्त जैसी सैनिक योग्यता तथा अशोक जैसा धार्मिक उत्साह देखने को मिलता है।

कनिष्क एक विदेशी शासक था,फिर भी उसने भारतीय संस्कृति में अपने को पूर्णतया विलीन कर लिया। उसने भारतीय धर्म ,कला एवं विद्वत्ता को संरक्षण प्रदान किया और इस प्रकार उसने मध्य तथा पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रवेश का द्वार खोल दिया।

5.कनिष्क के उत्तराधिकारी

कनिष्क ने 78 ई. से लेकर 101ई.(कनिष्क संवत् 1-23)तक शासन किया। इसने शक संवत् भी स्थापित किया था, परन्तु इसके उत्तराधिकारी शासकों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। कनिष्क के उत्तराधिकारी निम्नलिखित हैं-

(i.) वासिष्क(102-106 ई.अर्थात् कनिष्क संवत् 24-28)

(ii.) हुविष्क (106-140 ई.अर्थात् कनिष्क संवत् 28-62)

(iii.) कनिष्क द्वितीय(140-146 ई.अर्थात् कनिष्क संवत् 62-67)

(iv.) वासुदेव (146-177 ई.अर्थात् कनिष्क संवत् 67-98)

यद्यपि वासुदेव कुषाण वंश का अंतिम महान शासक था।

6.परवर्ती कुषाण शासक

कुषाण वंश के परवर्ती शासकों के विषय में भी अल्प जानकारी ही प्राप्त होती है। परवर्ती कुषाण शासक निम्नलिखित हैं-

(i.) कनिष्क तृतीय(180-210 ई.अर्थात् कनिष्क संवत् 101-131)

(ii.) वासुदेव द्वितीय(210-230 ई.अर्थात् कनिष्क संवत् 131-151)

7.कुषाणकालीन सामाजिक जीवन

कुषाण काल में भारतीय समाज का मूल ढाँचा अपरिवर्तित रहा। परम्परागत चार वर्णों का आधार जन्म बन गया तथा बहुसंख्यक पेशेवर जातियों की उत्पत्ति हो गयी। कृषि,व्यापार,वाणिज्य की प्रगति के परिणामस्वरुप समाज के निम्न वर्गों की दशा में सुधार हुआ तथा वैश्य-शुद्र का अंतर काफी कम हो गया। शक,कुषाण आदि विदेशी जातियों को स्मृतिकारों ने 'व्रात्य क्षत्रिय 'कहकर वर्ण व्यवस्था में स्थान दे दिया। निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि आम जनता का जीवन सुखी एवं सुविधापूर्ण था।

8.कुषाणकालीन आर्थिक समृद्धि

कनिष्क ने प्रथम बार एक अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य की स्थापना की थी। कुषाण साम्राज्य के पूर्व में चीन तथा पश्चिम में पार्थिया के साम्राज्य स्थित थे। इस काल में आर्थिक जीवन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता भारत का मध्य एशिया तथा पाश्चात्य विश्व के साथ घनिष्ट व्यापारिक संबंध की स्थापना थी। कुषाणों ने चीन से ईरान तथा पश्चिमी एशिया तक जाने वाले रेशम मार्ग को अपने नियंत्रण में रखा, क्योंकि यह मार्ग उनके साम्राज्य से होकर गुजरता था। यह मार्ग उनकी आमदनी का सबसे बड़ा स्रोत था, क्योंकि इससे जाने वाले व्यापारी बहुत अधिक कर देते थे। इस सिल्क व्यापार में

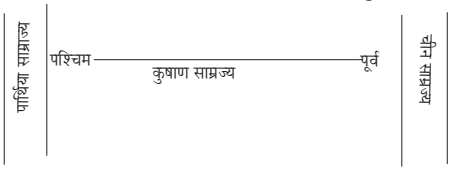

भारतीय व्यापारियों ने बिचौलियों के रुप में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। इस समय रोम साम्राज्य का भी उदय हो रहा था। रोम तथा पार्थिया के बीच संबंध अच्छे नहीं थे। अत: चीन के साथ व्यापारिक संबंध रखने के लिए रोमनों को कुषाण साम्राज्य की मित्रता पर ही निर्भर होना पड़ा। भारत के व्यापारी चीन से रेशम खरीद कर रोम को भेजते तथा उसके बराबर सोना प्राप्त करते थे। प्लिनी ने भारत को बहुमूल्य पत्थरों एवं रत्नों का प्रमुख उत्पादक बताया था। रोम प्रतिवर्ष भारत से विलासिता की सामग्रियाँ मँगाने में दस करोड़ सेस्टर्स व्यय करता था। वह अपने देशवासियों की इस अपव्ययिता के लिए निंदा करता है। विलासिता की सामग्रियों के बदले में भारत रोम से बड़ी मात्रा में स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त करता था।

पेरिप्लस के अनुसार भारत से मसाले,मोती,मलमल,हाथीदांत की वस्तुएँ,

औषधियाँ, चन्दन, इत्र आदि बहुतायत में रोम पहुँचते थे। रोम के निवासियों का भारतीय सामग्रियों के प्रति गहरा आकर्षण था। रोमन युवतियाँ भारतीय मोती के गहने धारण करती थीं तथा महिलाएँ मलमल की साड़ियों की दीवानी थीं।

कुषाणकालीन भारत में व्यापार-वाणिज्य के क्षेत्र में सिक्कों का नियमित रुप से प्रचलन हुआ। कुषाणों के पास स्वर्ण का भारी भण्डार था, जिसे उन्होंने मध्य एशिया के अल्ताई पहाड़ों एवं रोम से प्राप्त किया था। कुषाण सिक्के शुद्धता की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। कालान्तर में गुप्त शासकों ने इन्हीं के अनुकरण पर सिक्के चलवाये थे। उत्तर तथा पश्चिोत्तर प्रदेशों में कुषाणों ने बड़ी मात्रा में तांबे के सिक्के प्रचलित करवाए थे। ऐसा लगता है कि सामान्य व्यवहार में इन्ही का प्रयोग किया जाता था, जबकि विशेष लेन-देन स्वर्ण सिक्कों में होता होगा। इस प्रकार कनिष्क का काल आर्थिक समृद्धि एवं सम्पन्नता का काल था।

गंगा घाटी तथा मध्य एशिया के विभिन्न स्थलों की खुदाइयों से स्पष्ट हो जाता है कि कुषाण काल में नगरीकरण अत्यन्त विकसित हो गया था। आर.एस.शर्मा जैसे कुछ आधुनिक विद्वान् आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से कुषाण काल को ही प्राचीन भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग मानते हैं। बाह्य व्यापार के साथ-साथ आन्तरिक व्यापार तथा उद्योग-धंधे भी प्रगति पर थे। विभिन्न प्रकार के शिल्पों तथा व्यवसायों का सम्यक विकास हुआ और व्यापार-व्यवसाय में श्रेणियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही।

9.कुषाणकालीन साहित्यिक प्रगति

अश्वघोष कनिष्क के राजकवि थे। इनकी तुलना मिल्टन, गेटे, कान्ट, वाल्टेयर, आदि से की जाती है। इनकी तीन रचनायें हैं -बुद्धचरित, सौन्दरनंद तथा शारिपुत्रप्रकरण। नागार्जुन ने प्रजापारमितासूत्र की रचना की थी। पार्श्व, वसुमित्र, मातृचेट, संघरक्ष अन्य विद्वान भी कनिष्क की राजसभा में थे। संघरक्ष उसके पुरोहित थे। वसुमित्र ने विभाषाशास्त्र की रचना की थी। आयुर्वेद के विद्वान चरक कनिष्क के राजवैद्य थे, जिन्होंने चरकसंहिता की रचना की। यह औषधिशास्त्र के ऊपर प्राचीनतम रचना है।

10.स्थापत्य एवं कला

कनिष्क ने अपनी राजधानी पुरुषपुर में चार सौ फिट ऊँचा तेरह मंजिलों का एक टावर बनवाया था। उसी के पास में एक विशाल संघाराम बनवाया था, जिसे कनिष्क चैत्य कहा जाता है। इसका निर्माण यवन वास्तुकार अगिलस द्वारा किया गया था। इसके अतिरिक्त कनिष्क ने कश्मीर में कनिष्कपुर तथा तक्षशिला में सिरकप नामक

स्थान पर एक नए नगर का निर्माण कराया था। कनिष्क के काल में कला के क्षेत्र में दो स्वतंत्र शैलियों का विकास हुआ-

(i) गंधार कला शैली

(ii) मथुरा शैली

गंधार कला शैली

यूनानी कला के प्रभाव से देश के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में कला की जिस नवीन शैली का उदय हुआ,उसे गंधार शैली कहा जाता है। गंधार को सिंधु नदी दो भाग में विभाजित करती थी-पूर्वी और पश्चिमी गंधार। पूर्वी गंधार की राजधानी तक्षशिला और पश्चिमी गंधार की राजधानी पेशावर थी। महाभारत काल में इसका विशेष महत्व था,क्योंकि गंधारी यहीं की थी। गंधार कला के अन्तर्गत बुद्ध और बोधिसत्वों की बहुसंख्यक मूर्तियों का निर्माण हुआ। ये मूर्तियाँ काले स्लेटी पाषाण,चूने तथा पकी *मिट्टी* से बनी हैं। ये मूर्तियाँ ध्यान,पद्मासन,धर्मचक्रप्रवर्तन,वरद तथा अभय आदि मुद्राओं में है। गंधार शैली में कुछ देवी मूर्तियाँ भी मिलती हैं। इनमें हारीति तथा रोमा विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। हारीति को मातृदेवी के रुप में पूजा जाता था तथा वह सौभाग्य एवं धन-धान्य की अधिष्ठात्री देवी थी।

मथुरा कला शैली

यहाँ से अनेक हिंदू,बौद्ध एवं जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुईं हैं। यहाँ से बुद्ध एवं बोधिसत्वों की खड़ी तथा बैठी मुद्रा में बनी हुई मूर्तियाँ मिली हैं। वासुदेवशरण अग्रवाल का मानना है कि बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण सर्वप्रथम मथुरा शैली में ही हुआ। यहीं से कनिष्क की एक सिर रहित मूर्ति मिली है।

गंधार और मथुरा के अतिरिक्त सारनाथ से भी कुषाण काल की एक बोधिसत्व की विशाल मूर्ति मिली है ,जो खड़ी मुद्रा में है।

11.कुषाण साम्राज्य के पतन के कारण

कुषाण साम्राज्य के पतन के निम्नलिखित कारण हैं-

(i) गुप्तवंश के उदय के कारण-राखालदास बनर्जी का विचार है कि कुषाण सत्ता का विनाश गुप्तवंश के उदय के कारण हुआ,परन्तु यह मत निराधार है।

(ii) भारशिव(वाकाटकों)नागों के उदय के कारण-काशी प्रसाद जायसवाल का विचार है कि भारशिव नागों के उदय के कारण कुषाणों का पतन हुआ था। भारशिव

नागों का नेतृत्व वाकाटक नरेश प्रवरसेन प्रथम ने किया था, परन्तु अल्तेकर का विचार है कि भारशिवों अथवा वाकाटकों का कुषाणों से कोई संबंध नहीं था।

(iii) यौधेयों ने कुणिन्द और अर्जुनायन की मदद से कुषाणों को सतलज नदी के पार खदेड़ा-अल्तेकर ने इस प्रकार का विचार प्रस्तुत किया है।

अत: इन विभिन्न मतों को देखते हुए ऐसा अनुमान होता है कि नागों, यौधेयों आदि सभी ने कुषाण सत्ता की समाप्ति में कुछ न कुछ योगदान दिया था।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से कुषाण काल का संक्षिप्त इतिहास स्पष्ट होता है।

✷

परिशिष्ट-2

कुषाणों की अर्थव्यवस्था का एक सामान्य परिचय

कनिष्क ने प्रथम बार एक अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य की स्थापना की थी। इसके साम्राज्य के पूर्व में चीन तथा पश्चिम में पार्थिया स्थित थे। कुषाण काल की अर्थव्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण विशेषता व्यापार था,जिसमें भारत का मध्य एशिया तथा पाश्चात्य विश्व के साथ घनिष्ठ व्यापारिक संबंध की स्थापना थी। व्यापार के साथ कृषि,उद्योग-धन्धे,सिक्के एवं बाट-माप भी प्रमुख थे। अत: कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता के अन्तर्गत कृषि,उद्योग-धन्धे,व्यापार एवं सिक्को का अध्ययन किया गया है।

कृषि

इस काल में कृषि की स्थिति लगभग वही थी,जो मौर्य काल से चली आ रही थी। इस काल में कृषि पर राज्य का नियंत्रण नहीं था। समाज में वैश्यों की प्रधानता अन्य वर्णों की अपेक्षा अधिक थी। वे विभिन्न प्रकार के उद्योगों के साथ कृषि में भी दक्ष थे एवं कृषि संबंधी सभी औपचारिकताओं से भली प्रकार परिचित थे।

कृषि कार्य हलों की सहायता से की जाती थी। एक विवरण के अनुसार आनंद नामक गृहपति अपनी खेती पाँच सौ हलों की सहायता से करता था। हल के अतिरिक्त कुदाल(फावड़ा),हसिया(असिएहि)तथा सूप(सुपपकत्तर)आदि का भी प्रयोग होता था। स्पष्ट है कि हसिया से खेत काटा जाता था तथा मड़ाई करके निकाले गए अनाजों को सूप से साफ किया जाता था। जबकि तैयार किया हुआ अनाज विभिन्न प्रकार के संग्रहकों(बर्तनों)में रखा जाता था,जिनके नाम हैं-खवाहपल्लग,कुम्भीमुख,आचार आदि। यहाँ अनाज में गेहूँ,जौ,धान,मसूर,मूँग,गन्ना आदि का उत्पादन होता था।

इस काल में चरकसंहिता में अच्छे चावल की पन्द्रह किस्मों में कलम का भी उल्लेख मिलता है। सुश्रुतसंहिता में गेहूँ की दो किस्मों मधूलिका और नंदामुखी का

उल्लेख है। इसके अतिरिक्त कपास, अलसी और सन की भी खेती की जाती थी। फलों में आम, सेब, अंगुर, अंजीर, अनार, नारंगी और बेर प्रमुख थे(चरकसंहिता)। जबकि बेर की चार किस्मों का भी उल्लेख है-कुबल, कर्कन्धु, बदर और सौबीर।

अनाज और फल के अतिरिक्त मसालों का भी वर्णन है। इस काल में सरसों, धनिया, इलायची, लवंग, दालचीनी, कालीमिर्च, चोरक, दमनक, मरुवक, हरितकी और मेषश्रृंग आदि प्रमुख मसाले थे। यद्यपि इस समय भारत पर बाह्य आक्रमण बराबर होते थे, पर बाह्य आक्रमण का कृषि की उन्नति में कोई बाधा नहीं था। व्यापारियों द्वारा भूमि दान में दी जाती थी। राजा भी भूमि दान देते थे, जो कर मुक्त होता था तथा इसका उपयोग स्वेच्छानुसार किया जा सकता था। जबकि कृषि सुरक्षा के नियम भी बनाए गए थे। कृषि औजारों की चोरी सामान्य रुप से होती थी। जो लोग मेढ़ को तोड़ देते थे या गलत प्रकार का बीज बेचते थे, वे शासन द्वारा दण्डित किए जाते थे। कृषि के अन्तर्गत ही कृषि योग्य भूमि तथा सिंचाई की सुविधा देना राजा का नैतिक कर्त्तव्य का भी अध्ययन किया गया है।

(i) कृषि योग्य भूमि

इस समय कृषि योग्य भूमि को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-क्षेत्रिक और आसविक। क्षेत्रिक भूमि के अन्तर्गत फसल खेत में बोई जाती थी और आसविक भूमि के अन्तर्गत फसल को वनों मे बोया जाता था। इससे लगता है कि कृषि भूमि के विस्तार के लिए वनों को भी काटने की व्यवस्था थी। सम्भवत: जनसंख्या की वृद्धि को ध्यान में रखकर ऐसा किया गया हो, क्योंकि कुषाण काल में नगरीकरण अत्यन्त विकसित हो गया था। इस दृष्टि से ब्राह्मणों को अनुर्वर भूमि दान में दी जाती थी, ताकि वे उसको तोड़कर कृषि के योग्य बनाएँ।

(ii) सिंचाई की सुविधा

खेती में सिंचाई की सुबिधा देना राजा का नैतिक कर्त्तव्य था। जहाँ वर्षा के अभाव में कृषि असम्भव था, वैसी भूमि को केतु भूमि कहते थे। इसके लिए राज्य की ओर से कृत्रिम सिंचाई के दो साधन थे-वृष्टि और यान्त्रिक।

पहली शताब्दी ई.पू. का खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने कलिंग में विनष्ट तालाबों का केवल जीणोद्धार ही नहीं करवाया, बल्कि नंद राजाओं द्वारा खोदी गई पुरानी नहर 'तनसुलीय ' का विस्तार कर उसे नगर के भीतर भी पहुँचा दिया। रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख(150 ई.)से ज्ञात होता है कि उसने सुदर्शन

झील का पुन: जीर्णोद्धार कराया,जिससे लोग उससे सिंचाई कर सकें। रूद्रदामन उस पर होने वाले व्यय के लिए जनता पर अलग से कर का बोझ भी नहीं लगाया। इस काल में सामुहिक प्रयास से भी कुएँ और तालाब खोदने का चलन था और राज्य उनकी सहायता भी करता था। कनिष्क द्वितीय के आरा अभिलेख में लिखा है कि दसफोठ नामक व्यक्ति ने जनसाधारण की भलाई के लिए एक कुआ खुदवाया और राजा ने उसके लिए एक लाख सिक्कों का दान दिया।

उद्योग-धंधे

राजकीय नियंत्रण से इस समय उद्योग स्वतंत्र थे। उद्योगों की लंबी सूची इस समय के ग्रंथों में मिलती है। दीर्घनिकाय में 24 और मिलिन्दपञ्हों में 75 उद्योगों की चर्चा है,जिनमें से 60 उद्योग विविध विशेषताओं वाले थे। चीन के ऊनी वस्त्र उद्योग के साथ भारत में भी वस्त्र उद्योग विकसित था। यह स्पष्ट रुप से उन्नतिशील वस्त्र व्यवसाय का द्योतक है। इसकी प्रमुख विशेषता यह थी कि सूती वस्त्र इतने झीने और हल्के होते थे कि इसकी तुलना साँप के केचुल से की गई है। मथुरा में एक विशेष प्रकार का वस्त्र बना था,जिसे शतक कहा जाता था। इसी से मनु ने बुनकरों पर कर लगाने की सलाह दी है।

वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त दूसरे विकसित उद्योगों में धातु की बनी हुई सामग्रियाँ और वेशकीमती पत्थरों से बनी हुई सामग्रियाँ प्रमुख थीं। धातु में ताँबा(पेरिप्लस)और पीतल(चरकसंहिता)तथा पत्थरों में पन्ना,नीलम,पोखराज,हीरा एवं मोती आदि प्रमुख थे। कुम्भकार,गांधिक,तेली,मछुआ,बढ़ई और कुम्हार आदि के भी व्यवसायों की प्राय: चर्चा की गई है। इन व्यावसायियों ने अपना संगठन बनाया था,जिसे श्रेणी कहते थे। इसका प्रमुख उ-ेश्य उद्योग विशेष को प्रोत्साहन करना,उसके लिए प्रशिक्षण देना तथा विक्रय की व्यवस्था आदि करना था।

व्यापार

इस समय आन्तरिक और विदेशी(बाह्य),दोनों प्रकार के व्यापार पनप रहे थे। इनमें सबसे उन्नतिशील विदेशी व्यापार था। तत्कालीन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि रोम के साथ भारत का व्यापारिक संपर्क बड़ा ही विकसित हो चुका था। व्यापार जल एवं स्थल,दोनों ही मार्गों से होता था।

(i) आन्तरिक व्यापार

आन्तरिक व्यापार के लिए देश के भीतर सड़कों का जाल बिछा था। इनके

द्वारा व्यापारी आते-जाते थे तथा वस्तुओं का आदान-प्रदान करते थे। ये मार्ग व्यापारिक केन्द्रों से जुड़े थे। दक्षिण भारत में व्यापारिक केन्द्र पैठन(प्रतिष्ठान),नासिक,जुन्नार आदि थे। यह सभी स्थान महाराष्ट्र में हैं। आन्तरिक व्यापार के लिए विविध प्रकार के सिक्कों का प्रचलन था।

(ii) विदेशी(बाह्य)व्यापार

इस समय आर्थिक जीवन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता भारत का मध्य एशिया तथा पाश्चात्य विश्व के साथ घनिष्ठ व्यापारिक संबंध की स्थापना थी। कुषाणों ने चीन से ईरान तथा पश्चिमी एशिया तक जाने वाले रेशम के मार्ग को अपने नियंत्रण में रखा,क्योंकि यह मार्ग उनके साम्राज्य से होकर गुजरता था। यह मार्ग उनकी आमदनी का सबसे बड़ा स्रोत था,क्योंकि इससे जाने वाले व्यापारी बहुत अधिक कर देते थे। इस सिल्क व्यापार में भारतीय व्यापारियों ने विचौलियों के रुप में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। इसके फलस्वरुप उत्तरी-पश्चिमी भारत एक अत्यन्त समृद्ध व्यापारिक केन्द्र के रुप में विकसित हो गया।

इस समय रोम साम्राज्य की भी स्थापना हो चुकी थी,जिससे व्यापारिक मार्ग अब पहले की अपेक्षा अधिक सुरक्षित थे। लेकिन रोम तथा पार्थिया के बीच संबंध अच्छे नहीं थे। अत: चीन के साथ व्यापारिक संबंध रखने के लिए रोमनों को कुषाण साम्राज्य की मित्रता पर ही निर्भर रहना पड़ा। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि इस समय का विदेशी व्यापार मुख्य रुप से रोम से किया जाता था। यह व्यापार समुद्र मार्ग (जलमार्ग)से होता था,क्योंकि हिप्पालस(Hippalus)नामक किसी यूनानी ने 45 दिनों में भारत और रोम के बीच यातायात का मार्ग ढूढ़ निकाला था,जो पहले तीन माह में पूरा किया जाता था।

भारतीय व्यापार की वस्तुएँ बंदरगाहों पर इकठ्ठे होते थे। उत्तर तथा दक्षिण भारत के उद्योगों से उत्पन्न माल बंदरगाहों पर इकट्ठा होने के बाद जहाजों द्वारा बाहर भेजे जाते थे। इनमें पश्चिम तट के बंदरगाहों में भृगुकच्छ(गुजरात में स्थित भड़ौच बंदरगाह,जो प्राचीन काल में भरुकच्छ या भृगुकच्छ नाम से प्रसिद्ध था),सोपारा (महाराष्ट्र),कल्याण (बंबई के निकट)तथा पूर्वी तट के बंदरगाहों में मसुलिपट्टम एवं मदुरै(दोनों ही स्थान तमिलनाडु में)आदि प्रमुख थे।

भारत के व्यापारी चीन से रेशम खरीदकर रोम को भेजते तथा उसके बराबर सोना प्राप्त करते थे। प्लिनी(Natural History)भारत को बहुमूल्य पत्थरों एवं रत्नों

का प्रमुख उत्पादक बताता है। उसके विवरण से ज्ञात होता है कि रोम प्रतिवर्ष भारत से विलासिता की सामग्रियाँ मँगाने में दस करोड़ सेस्टर्स(Sesosteres)व्यय करता था। वह अपने देशवासियों की इस अपव्ययिता के लिए निंदा करता है। भारत विलासिता की सामग्रियों के बदले में रोम से बड़ी मात्रा में स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त करता था।

पेरिप्लस (पहली शताब्दी ई.)से भी स्वर्ण मुद्रा की पुष्टि होती है। इससे ज्ञात होता है कि भारत से मसाले,रत्न(मोती),मलमल,हाथीदांत की वस्तुएँ,औषधियाँ,सुगंधित पदार्थ(चन्दन,इत्र)वस्त्राभूषण(रेशमी वस्त्र)आदि बहुतायत में रोम पहुँचते थे(अर्थात् निर्यात होता था)। इसके बदले रोम का सोना भारत आता था। भारत में रोम के स्वर्ण सिक्के मिलते हैं। यह सिक्के लंका,मुदरै(तमिलनाडु),बंबई,मैसूर ,मध्य प्रदेश,कोयम्बटूर आदि स्थलों से प्राप्त हुए हैं। गुजरात,मालवा और राजस्थान आदि की खुदाई में बहुत से मृदभाण्ड रोमन कला के मिले हैं। इससे स्पष्ट है कि रोम के बर्तनों के साथ भारत में भी उसी नमूने के बर्तन मिलने लगे थे। कुषाण राजाओं के कुछ सिक्के रोमन सम्राट आगस्टस के अनुकरण पर बने हैं तथा मिर्जापुर,इलाहाबाद,कन्नौज एवं चुनार की खुदाई में भी रोमन सिक्कों की प्राप्ति हुई है,जो इसको पुष्ट करता है। रोम के निवासियों का भारतीय सामग्रियों के प्रति गहरा आकर्षण था। रोमन युवतियाँ भारतीय मोती के गहने धारण करती थीं तथा महिलाएँ मलमल की साड़ियों की दीवानी थीं।

इस समय पूर्वी विश्व से भी भारत का व्यापार होने लगा था। जो जल तथा स्थल,दोनों मार्गों से होता था। चीन की सामग्रियाँ भारत में बिकने के लिए बर्मा से होकर आती थीं तथा कुछ अफगानिस्तान तक जाती थीं। निश्चय ही बर्मा से भी भारत का व्यापारिक संपर्क रहा होगा। तभी वहाँ से होकर विदेशी माल भी भारत में आयात होता होगा। मैसूर में चीन का सिक्का मिलना तथा भारतीय जहाजों द्वारा चीनी व्यापारियों का व्यापार करना भी ,इस संपर्क को पुष्ट करता है। बौद्ध ग्रंथों में सुवर्ण भूमि(आधुनिक बंगाल)और भारत के बीच यात्रा का उल्लेख भी इसी तथ्य को स्पष्ट करता है। जावा और सुमात्रा से भी भारत का इस समय व्यापारिक संपर्क था।

अत: इस समय भारत का विदेशी व्यापार रोम,चीन,ईरान,साइबेरिया,बर्मा, अफगानिस्तान,जावा और सुमात्रा से होता था। इस समय आयातित वस्तुओं में दास,घोड़ा, रेशम,पटसन,मदिरा,सोना(साइबेरिया),तांबा,जस्ता,रांगा,मूंगा,तिल(फारस)आदि था। जबकि निर्यात की वस्तुओं में कालीमिर्च,दालचीनी,नील,कपास,सागौन,रत्न(मोती), मलमल,हाथीदांत की वस्तुएँ ,औषधियाँ एवं सुगन्धित पदार्थ(चन्दन,इत्र)आदि था।

भारत का विदेशी व्यापार जल एवं स्थल, दोनों ही मार्गों से होता था।

सिक्का

कुषाणकालीन भारत में व्यापार-वाणिज्य के क्षेत्र में सिक्कों का नियमित रुप से प्रचलन हुआ। कुषाणों के पास स्वर्ण का भारी भण्डार था, जिसे उन्होंने मध्य एशिया के अल्ताई पहाड़ों एवं रोम से प्राप्त किया था। स्वर्ण सिक्कों का प्रचलन विम कडफिसेस के काल से हुआ और कनिष्क के समय तक आते-आते भारी मात्रा में स्वर्ण सिक्कों का निर्माण होने लगा। कुषाण सिक्के शुद्धता की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। कालान्तर में गुप्त शासकों ने इन्हीं के अनुकरण पर सिक्के चलवाये थे। उत्तर तथा पश्चिमोत्तर प्रदेशों में कुषाणों ने बड़ी मात्रा में तांबे के सिक्के प्रचलित करवाये थे। ऐसा लगता है कि सामान्य व्यवहार में इन्हीं का प्रयोग किया जाता था, जबकि विशेष लेन-देन स्वर्ण सिक्कों में होता होगा।

इस प्रकार अन्त में कहा जा सकता है कि कृषि, उद्योग-धन्धे, व्यापार एवं सिक्कों के अध्ययन से स्पष्ट है कि कुषाणों का शासन काल आर्थिक समृद्धि एवं सम्पन्नता का काल था। गंगा घाटी तथा मध्य एशिया के विभिन्न स्थलों की खुदाईयों से स्पष्ट है कि कुषाण काल मे नगरीकरण अत्यन्त विकसित हो गया था। आर.एस.शर्मा जैसे कुछ आधुनिक विद्वान् आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से कुषाण को ही प्राचीन भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग मानते हैं। अत: कुषाणकालीन अर्थव्यवस्था में कृषि, सिक्के और बाह्य व्यापार के साथ-साथ आंतरिक व्यापार तथा उद्योग-धंधे प्रगति पर थे।

✷

परिशिष्ट-3

ऐतिहासिक सिल्क रुट चौवालीस साल बाद पुनः खुला

पुराना सिल्क रूट कहलाने वाला नाथूला दर्रे के पुन: खुलने से भारत और चीन के बीच 1962 की जंग से चली आ रही कड़वाहट दूर हो गई है। व्यापार के लिए प्रचलित यह मार्ग कुषाण काल में भी अपने अस्तित्व को बनाए हुए था। नाथूला दर्रे के खुलने के बाद व्यापार की औपचारिक शुरुआत के लिए सौ भारतीय व्यापारियों का एक दल अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पारकर नाथूला से तीस किमी दूर तिब्बत स्वायत्तशासी क्षेत्र के रेनछिंगगांग ट्रेड मार्ट गया और सीमा पार से इतनी ही संख्या में चीन के व्यापारी भारतीय सीमा के शेराथांग मार्ट आए।[1] नाथूला सिक्किम और तिब्बत की सीमा पर स्थित है।

सीमा पार से भारत में प्रवेश करने वाले वाहनों को पचास रुपया शुल्क देना होगा,जबकि भारत की ओर से चीन में प्रवेश करने वाले वाहनों को पाँच युआन का भुगतान करना होगा। व्यापार के लिए किया जाने वाला लेन-देन अमेरिकी डालर में होगा। इस मार्ग से जहाँ भारतीय बाजारों तक चीनी सिल्क,बकरी के चमड़े,विभिन्न प्रकार के ऊन,घरेलू बिजली के सामान और जड़ी-बूटियाँ बिकनें लगेगीं ,वहीं भारतीय व्यापारी चीनी बाजारों तक अपने पशु-धन को पहुँचा सकेगें।

इस मार्ग से व्यापार की शुरुवात के बाद नाथूला,भारत और चीन के बीच व्यवसाय का तीसरा मार्ग बन गया है। अभी तक हिमांचल प्रदेश के शिकलेला दर्रे और उत्तरांचल के लिपुलेख दर्रे से सड़क मार्ग के जरिए चीन के साथ व्यापार होता रहा है।

इस मार्ग के खुल जाने से यह उम्मीद की जा रही है कि सर्वाधिक आबादी वाले दोनों देशों (भारत और चीन) के बीच द्विपक्षीय व्यापार में विस्तार होगा और इस मार्ग से चीन अपना सीधा संपर्क हिंद महासागर तक बना सकेगा। जबकि चीन का मानना है कि नाथूला दर्रे से भारत,बंगलादेश,भूटान एवं नेपाल सहित दक्षिण एशिया के बड़े बाजारों

1. हिन्दुस्तान समाचार पत्र,वाराणसी, 7/7/06,पृष्ठ संख्या 16

तक उसकी पहुँच आसान हो जाएगी।

इस प्रकार जो प्राचीन सिल्क रूट व्यापारिक मार्ग के रुप में विकसित था, उसे पुन: व्यापारिक मार्ग के रुप में समर्थन प्राप्त हुआ है और एक बार फिर भारत-चीन अपने प्राचीन व्यापारिक संपर्क को नई दिशा दिए हैं।

✷

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

मूल ग्रंथ

1.ऋग्वेद : दामोदर सातवलेकर(सम्पादक),स्वाध्याय मण्डल,पारडी,बलासड,द्वितीय संस्करण 1983

2.अर्थशास्त्र : उदयवीर शास्त्री(हिन्दी अनुवादक),तीन भाग,दरियागंज,दिल्ली,1970

3.आपस्तम्ब धर्मसूत्र : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस,वाराणसी,1969

4.रामायण : गीताप्रेस,गोरखपुर,1997

5.महाभारत : गीताप्रेस,गोरखपुर,2003

6.मनुस्मृति : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस,वाराणसी,1970

7.याज्ञवल्क्य स्मृति : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस,वाराणसी,1940

8.वृहस्पति स्मृति : ए.के.वी.रंगास्वामी(अनुवाद),बड़ौदा,1941

9.नारद स्मृति : श्रीराम शर्मा(सम्पादक),बरेली,1966

10.पेरिप्लस ऑफ दि एरीथ्रियन सी : जे.डब्ल्यु.मैकक्रिंडल(अनुवादक) कलकत्ता,1979

11.चरकसंहिता : बम्बई,1941

12.सुश्रुतसंहिता : बम्बई,1938

13.विनयपीटक : एच.ओल्डेनबर्ग(सम्पादक),लंदन(पी.टी.एस.),1883

14.जातक : ई.बी.काउवेल एवं अन्य(अनुवाद),कैम्ब्रीज,1913

15.दीर्घनिकाय : लंदन(पी.टी.एस.),1911

16.सुत्तनिपात : लंदन(पी.टी.एस.),1913

17.महावग्ग एवं चुल्लवग्ग : एच.ओल्डेनबर्ग,लंदन(पी.टी.एस.),1883

सहायक ग्रंथ

1.अग्रवाल,वी.एस. : इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनी,लखनऊ,1952

2.अय्यंगार,के.वी.रंगास्वामी : एंशिएण्ट इण्डियन इकोनामिक थॉट, बनारस,1934

3.अच्युतानंद घिल्डियाल : प्राचीन भारतीय सामाजिक संस्थाएँ,विवेक घिल्डियाल बन्धु,वाराणसी,1973

4.अप्पदोराई,ए. : इकोनामिक कण्डीशन इन साउथ इण्डिया (भाग-1,2)मद्रास,1936

5.अपार्ट,जी. : एंशिएण्ट कामर्स ऑफ इण्डिया,मद्रास,1879

6.आद्या,सी.एल. : अर्ली इण्डियन इकोनामिक्स,बम्बई,1966

7.इघोल्ट : गंधारन आर्ट इन पाकिस्तान,न्यूयार्क,1967

8.उपाध्याय,वासुदेव : प्राचीन भारत की मुद्राएँ

9.काणे,पी.वी. : हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र,पूना,1939

10.कुमार,बलदेव : दि अर्ली कुषाणाज,नई दिल्ली,1973

11.कोल,सी.एच : हिस्ट्री ऑफ टेक्नालाजी,भाग-1

12.गोयल,श्रीराम : कनिष्क की तिथि,इतिहास समीक्षा जयपुर,वर्ष-2,अंक-2

: प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह,जयपुर

: प्राचीन भारतीय मुद्राएँ

13.गोपाल,एम.एच. : मौर्यन पब्लिक फाइनेन्स,लंदन,1935

14.गौड़,ए.पी. : प्राचीन भारत का आर्थिक विकास

15.चॅ¨पाध्याय,भास्कर : कुषाण स्टेट एण्ड इण्डियन सोसाइटी, कलकत्ता,1975

: दि एज ऑफ दि कुषाणाज

16.चॅ¨पाध्याय,सु : अर्ली हिस्ट्री ऑफ नार्थ इण्डिया

17.चक्रवर्ती,एस.के. : करेन्सी प्राब्लम्स इन एंशिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता,1937

18.चक्रवर्ती,एच. : ट्रेड एण्ड कामर्स ऑफ एंशिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता,1967

19.चाल्सवर्थ,एम.पी. : ट्रेड रूट्स एण्ड कामर्स ऑफ दि रोमन एम्पायर,कैम्ब्रीज,1924

20.चौबे,झारखण्डे : इतिहास दर्शन,विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,2001

21.झा.डी.एन. : रेवेन्यु सिस्टम इन पोस्ट मौर्य एण्ड गुप्त टाइम्स

22.थापर,रोमिला : भारत का इतिहास,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2000

23.दानी.ए.एच. : इण्डियन पेलियोग्राफी,आक्सफोर्ड,1963

: टू कुषाण इंस्क्रिप्शन्स

24.दास.एस.के. : इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया कलकत्ता,1949

25.दीक्षित,एस.एन. : प्री हिस्टारिक सिविलाइजेशन ऑफ दी इण्डस वैली,मद्रास,1939

26.नारायण,ए.के. : दि इण्डो ग्रीक्स,आक्सफोर्ड,1957

27.पाण्डेय,जयनारायण : पुरातत्व विमर्श,इलाहाबाद,2000

28.पाण्डेय,रामनिहोर : दक्षिण भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,इलाहाबाद,2000

29.पुरी,बी.एन. : इण्डिया इन द टाइम ऑफ पातञ्जलि,बम्बई, 1957

: सेण्ट्रल एशियन दि कुषाण पीरियेड,1974

: इण्डिया अण्डर दि कुषाणाज

30.प्रसाद,कामेश्वर : सिटीज क्राफ्ट्स एण्ड कामर्स अण्डर दि

कुषाणाज,दिल्ली,1984

31.प्रकाश,ओम : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास,नई दिल्ली,2003

32.बागची,पी.सी. : इण्डिया एण्ड चाइना,बम्बई,1950

33.बाशम,ए.,एल. : दि डेट ऑफ कनिष्क,लीडेन,1968

34.ब्राऊनी,सी.जे. : क्वायन्स ऑफ इण्डिया,कलकत्ता,1922

35.बूच,एम.एन. : इकोनामिक लाइफ इन एंशिएण्ट इण्डिया,बड़ौदा

36.बोस,ए.एन. : सोशल एण्ड रूरल इकोनामि ऑफ नादर्न इण्डिया, कलकत्ता,1945

37.भण्डारकर,डी.आर. : लेक्चर्स आन एंशिएण्ट इण्डियन न्यूमिस्मेटिक्स,कलकत्ता,1921

38.मजूमदार,आर.सी. : दि वैदिक एज.लंदन,1957

39.मार्शल,जे. : प्रिन्सिपुल्स ऑफ इकोनामिक्स

40.मुखर्जी,वी.एन. : दि कुषाणाज एण्ड दि दकन,कलकत्ता,1968

: डिस्ट्रेगेशन ऑफ कुषाण एम्पायर , कलकत्ता,1976

: दि इकोनामिक फैक्टर्स इन कुषाण हिस्ट्री, कलकत्ता,1970

: जीनियोलाजी एण्ड क्रोनोलाजी ऑफ दि कुषाणाज

41.मुखर्जी,एस.एन. : इण्डिया हिस्ट्री एण्ड थाट,कलकत्ता,1984

42.मेहता,आर.एल. : प्री बुद्धिस्ट इण्डिया,बम्बई,1939

43.मैकी,ई.जे.एच. : अर्ली इण्डस सिविलाइजेशन,लौजाक,1949

44.वाट्स,जी. : सी सेम आयल

45.वारमिंगटन,ई.एच. : कामर्श बिट्वीन रोमन एम्पायर एण्ड इण्डिया, कैम्ब्रीज,1928

46.व्यास,एन.आर. : रामायणकालीन समाज,दिल्ली,1958
47.व्हीलर,आर.ई.एम. : इण्डस सिविलाइजेशन
48.राय,राजवंत : प्राचीन भारत की मुद्राएँ
49.रायचौधरी,हेमचन्द्र : प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास,इलाहाबाद
50.शर्मा,हरिश्चन्द्र : प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास
51.शर्मा,जी.आर. : कुषाण स्टडीज
52.शर्मा,आर.सी. : स्टेजेज इन एंशिएण्ट इण्डियन इकोनामी, दिल्ली,1961
53.सरकार,डी.सी. : सम प्राब्लम्स ऑफ कुषाण एण्ड राजपूत हिस्ट्री, कलकत्ता,1969
: ईस्टर्न इडिया एण्ड दि कुषाणाज
: ईस्टर्न बाउण्ड्री ऑफ दि कुषाण एम्पायर
54.सरकार,के.आर. : पब्लिक फाइनेन्स इन एंशिएण्ट इण्डिया
55.सम-र,जे.एन. : इकोनामिक कण्डीशन ऑफ एंशिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता,1922
56.सिंह,आनन्द शंकर : प्राचीन भारतीय मुद्राएँ,इलाहाबाद,1995
57.सिंह,परमानन्द : इतिहास दर्शन,मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली,2003
58.सुब्रह्मण्यम् : सेन्ट्रल एशिया इन दि कुषाण पीरियड(भाग-1,2)मास्को,1974
59.सुब्बाराव,एन.एस. : इकोनामिक एण्ड पालिटिकल कंडीशन इन एंशिएण्ट इण्डिया,मैसूर,1911
60.संकालिया,एच.डी. : दि एक्सवेशन्स ऐट महेश्वर एण्ड नवतौली, 1952-53
: फ्राम हिस्ट्री टू प्री हिस्ट्री ऐट नेवासा,1954-56

61.स्काफ,डब्ल्यु.एच. : दी पेरिप्लस ऑफ दी एरीथ्रियन सी,लंदन, 1912

62.स्मिथ,बी. : कामर्श ऑफ दि एंशिएण्ट ,भाग-2

63.श्रीवास्तव,के.सी. : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, इलाहाबाद,2001

पत्र-पत्रिका

1.टाइम्स ऑफ इण्डिया,नई दिल्ली,2001

2.हिन्दुस्तान समाचार पत्र,वाराणसी,2006-07

✹

मानचित्र एवं सिक्के

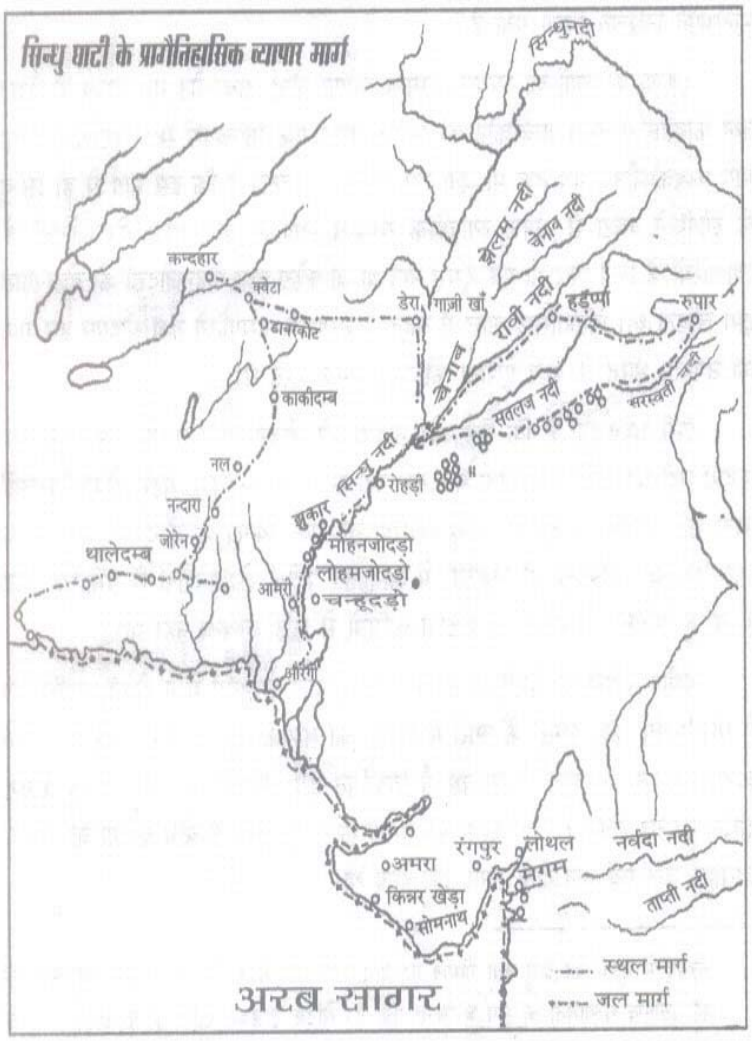
सिन्धु घाटी के प्रागैतिहासिक व्यापार मार्ग
सिन्धुनदी
झेलम नदी
चेनाब नदी
कन्दहार
क्वेटा
डेरा गाज़ी खाँ
रावी नदी
हड़प्पा
रुपार
डाबरकोट
चेनाब
काकीदम्ब
सतलज नदी
सरस्वती नदी
नल
सिन्धु नदी
रोहड़ी
नन्दारा
शुक्कार
मोहनजोदड़ो
जोरेन
थालेदम्ब
लोहमजोदड़ो
आमरी
चन्हूदड़ो
औरंगा
रंगपुर
लोथल
नर्वदा नदी
अमरा
भेगम
किन्नर खेड़ा
सोमनाथ
ताप्ती नदी
स्थल मार्ग
जल मार्ग
अरब सागर

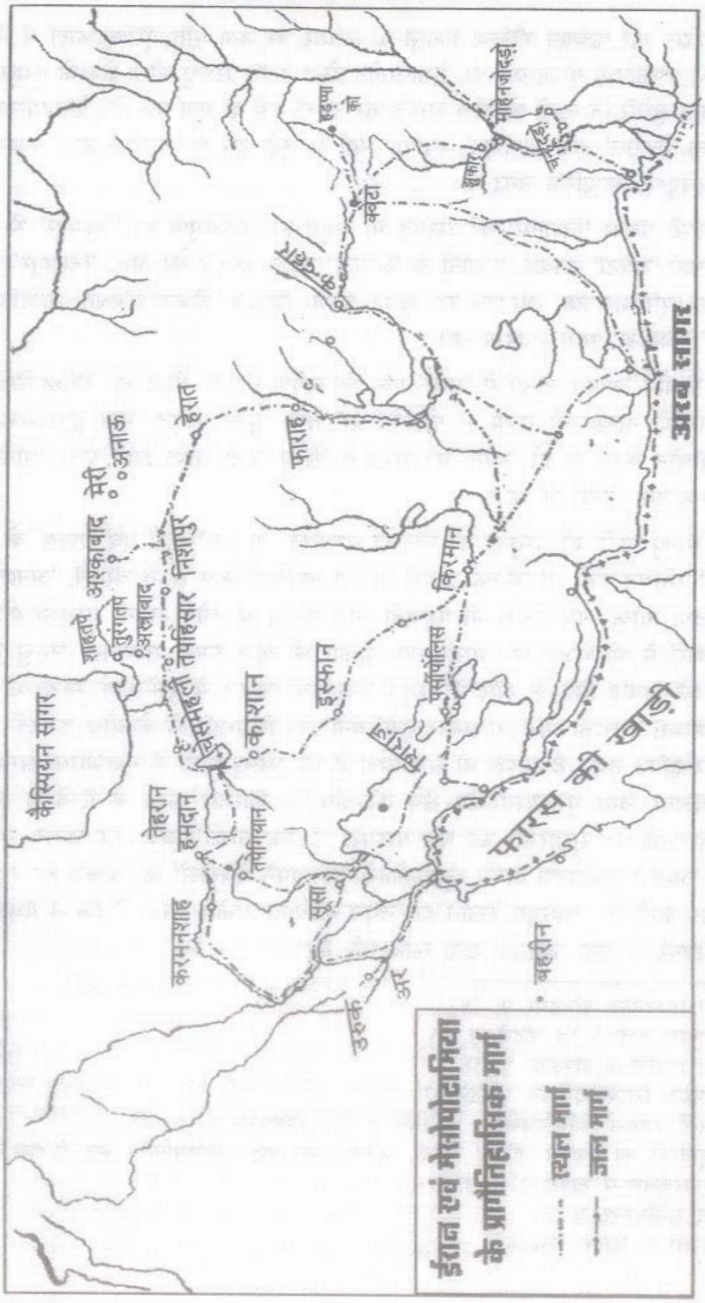
ईरान एवं मेसोपोटामिया
के प्रागैतिहासिक मार्ग
स्थल मार्ग
जल मार्ग
कैस्पियन सागर
शाहरी
अस्काबाद
मेरी
अनाऊ
तुरगाव
अखाबाद
हेरात
तेहरान
हमदान
बिसमहली
तपोहिसार
निशापुर
करमनशाह
तकीयान
कासान
इस्फान
फाराह
सुसा
उरुक
अर
हरमुज
पर्सीपोलिस
किरमान
फारस की खाड़ी
बहरीन
रुकार
मोहनजोदड़ो
अरब सागर

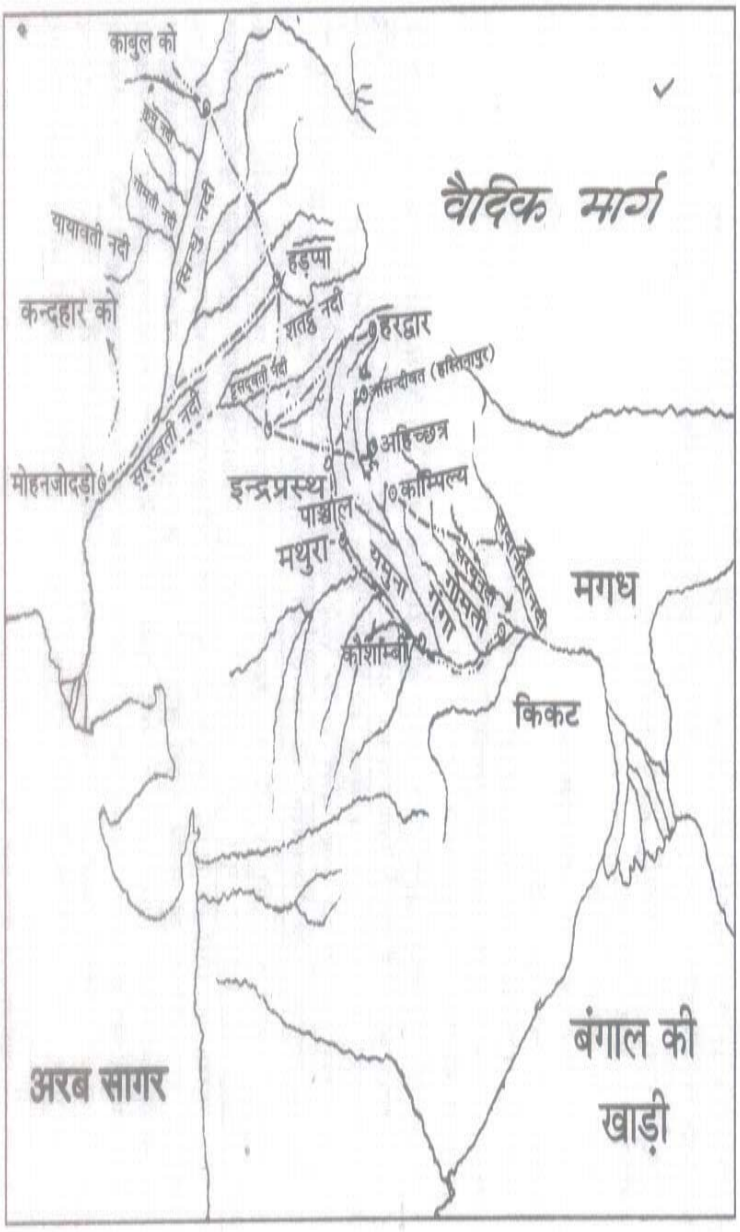
काबुल को
वैदिक मार्ग
यायावती नदी
सिन्धु नदी
हड़प्पा
कन्दहार को
शतद्रु नदी
हरद्वार
इरावती नदी
अहिच्छत्र
मोहनजोदड़ो
सरस्वती नदी
इन्द्रप्रस्थ
पाञ्चाल
कांम्पिल्य
मथुरा
यमुना
गंगा
मगध
कौशाम्बी
किकट
बंगाल की
खाड़ी
अरब सागर

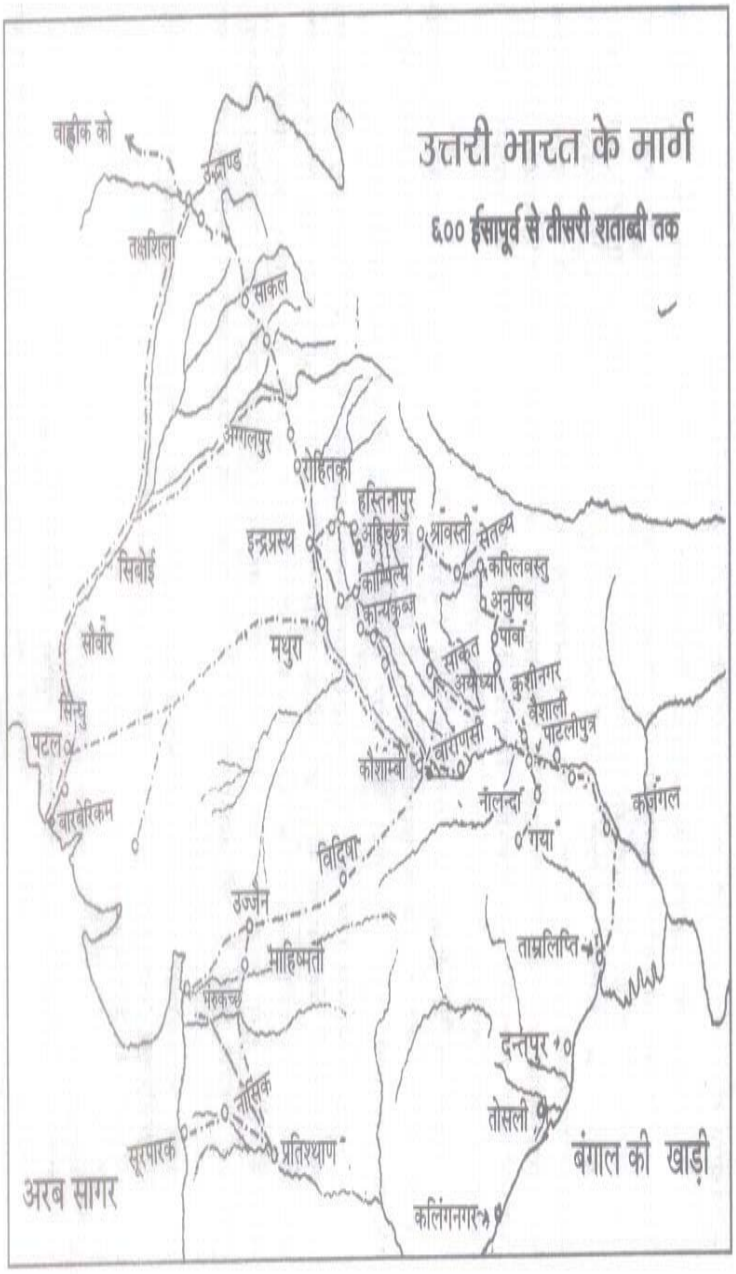
उत्तरी भारत के मार्ग
६०० ईसापूर्व से तीसरी शताब्दी तक
वाह्लीक को
उरशा
तक्षशिला
साकल
अंगलपुर
रोहितक
हस्तिनापुर
अहिच्छत्र
श्रावस्ती
सेतव्य
इन्द्रप्रस्थ
कपिलवस्तु
सिंधोई
कांपिल्य
अनुपिय
कान्यकुब्ज
पावा
सौवीर
मथुरा
साकेत
अयोध्या
कुशीनगर
सिन्धु
वैशाली
पटल
पाटलीपुत्र
वाराणसी
कौशाम्बी
नालन्दा
कलिंगल
बारबेरिकम
गया
विदिशा
उज्जैन
ताम्रलिप्ति
माहिष्मती
भरुकच्छ
दन्तपुर
नासिक
तोसली
सूरपारक
प्रतिश्थाण
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
कलिंगनगर

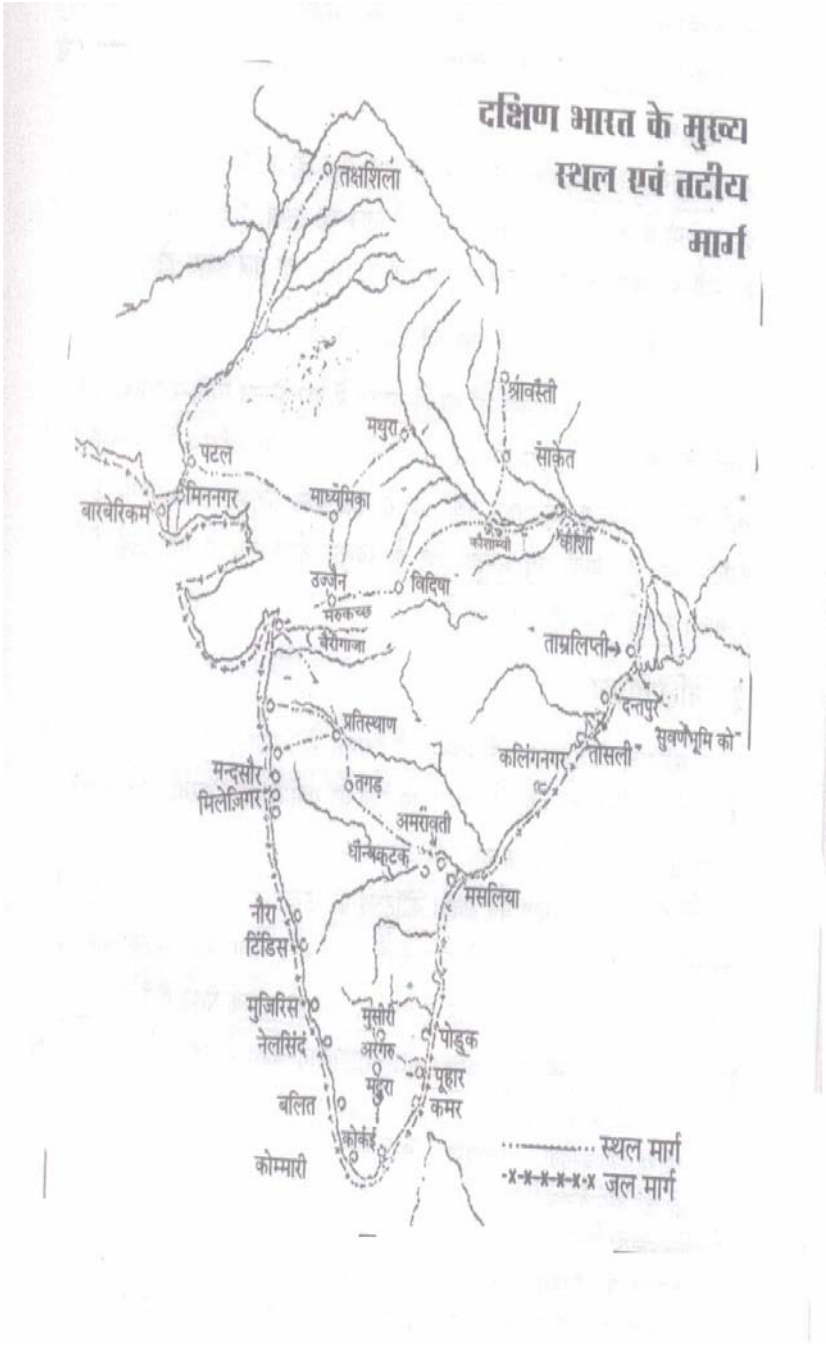
दक्षिण भारत के मुख्य
स्थल एवं तटीय
मार्ग
तक्षशिला
श्रावस्ती
मथुरा
पटल
साकेत
मिननगर
बारबेरिकम
माध्यमिका
कौशाम्बी
काशी
उज्जैन
विदिशा
भरुकच्छ
बैरीगाजा
ताम्रलिप्ती
दन्तपुर
प्रतिस्थान
सुवर्णभूमि को
कलिंगनगर
तोसली
मन्दसौर
मिलेजिगर
तगड़
अमरावती
धान्यकटक
मसलिया
नौरा
टिंडिस
मुजिरिस
मुसीरी
नेलसिंदं
अरगरु
पोडुक
मदुरा
पूहार
बलित
कमर
कोर्कई
कोम्मारी
स्थल मार्ग
जल मार्ग

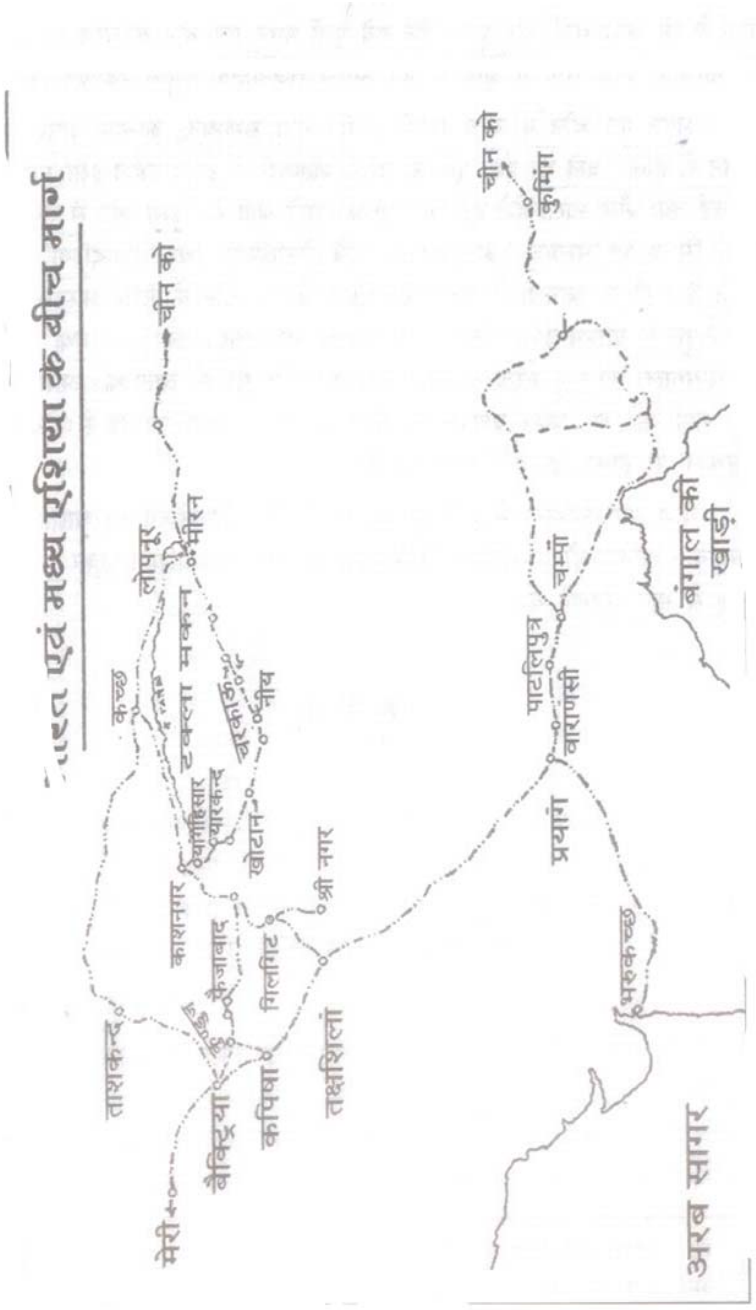
एवं मध्य एशिया के बीच मार्ग
चीन को
कुचा
लोपनूर
मीरन
कुचा
मकन
कुचा
चीन को
कुमिंग
कश्मीर
यारकन्द
खोटान
नीय
श्री नगर
कारानगर
काशगर
गिलगिट
तक्षशिला
कपिशा
बैक्ट्रिया
ताशकन्द
मेरी
पाटलिपुत्र
चम्पा
वाराणसी
प्रयाग
भरुकच्छ
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर

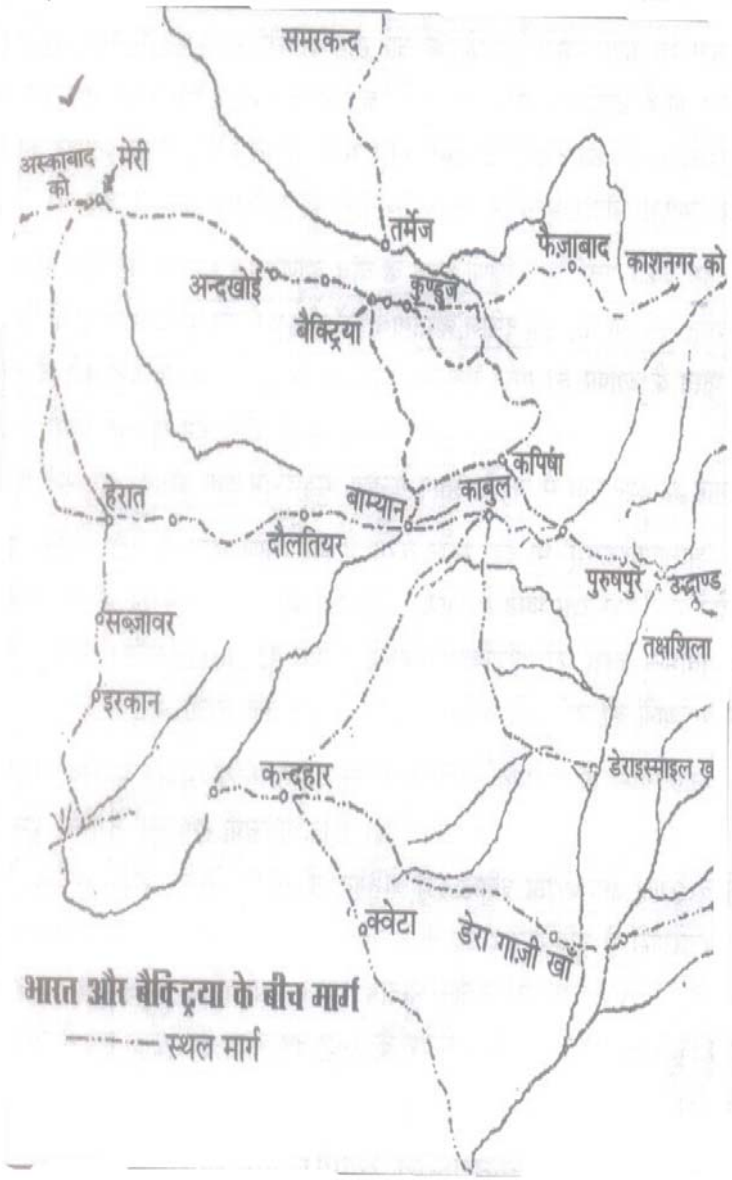
समरकन्द
अस्काबाद को
मेरी
तर्मेज
फ़ैज़ाबाद
काशनगर को
अन्दखोई
कुण्डुज
बैक्ट्रिया
कपिषा
हेरात
बाम्यान
काबुल
दौलतियर
पुरुषपुरे
उद्भाण्ड
सब्ज़ावर
तक्षशिला
इरकान
कन्दहार
डेराइस्माइल ख
क्वेटा
डेरा गाज़ी खाँ
भारत और बैक्ट्रिया के बीच मार्ग
स्थल मार्ग

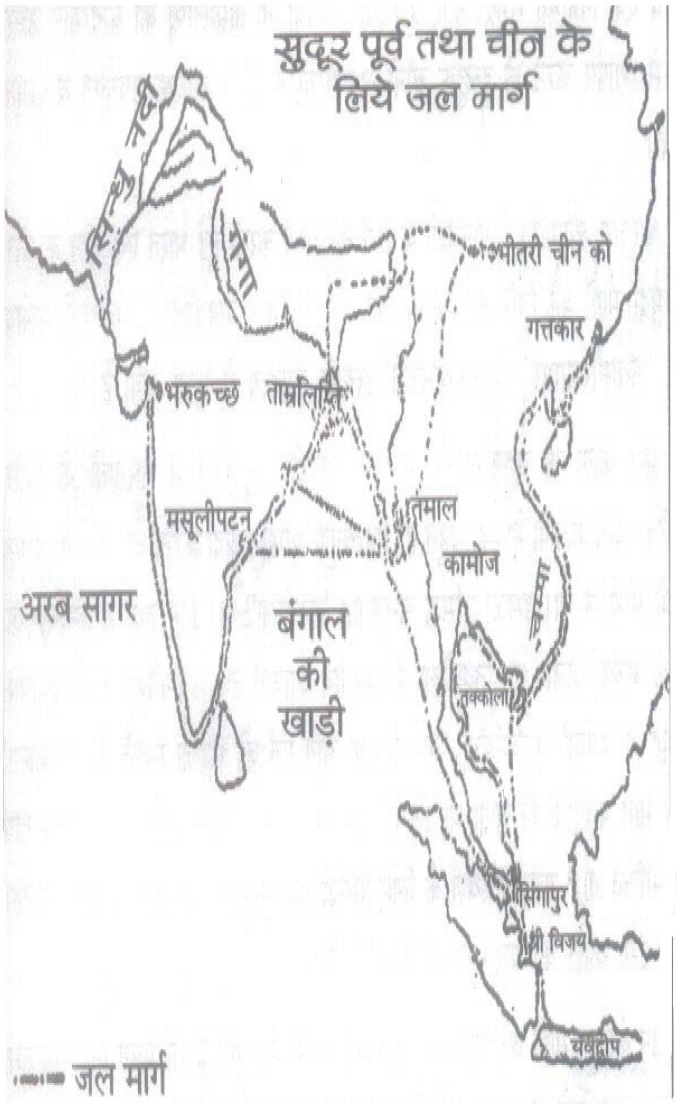
सुदूर पूर्व तथा चीन के
लिये जल मार्ग
सिन्धु नदी
गंगा
भीतरी चीन को
गत्तकार
भरुकच्छ
ताम्रलिप्ति
तमाल
मसूलीपटन
कामोज
अरब सागर
बंगाल
की
खाड़ी
तक्कोला
सिंगापुर
श्री विजय
यवद्वीप
जल मार्ग

मानचित्र – 4

१५० ई० का भारत
काशगर
यारकंद
खोतान
पुरुषपुर
तक्षशिला
झेलम
चिनाब
रावी
सतलज
शाकल
ब्रह्मपुत्र
कपिलवस्तु
मथुरा
यमुना
गंगा
पाटलिपुत्र
प्रयोग
बनारस
कौशाम्बी
अवन्ति
गया
सोन
उज्जयिनी
ताम्रलिप्ति
नर्मदा
ताप्ती
सातवाहन
महानदी
सूर्पारक
नासिक
प्रतिष्ठान
बम्बई
साम्राज्य
कृष्णा
गोदावरी
वेङ्गीपुर
वान्यकटक
अमरावती
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
काँची
चोल
कावेरी
मदुरा
पाण्ड्य
लंका
कुषाण साम्राज्य
पश्चिमी क्षत्रप
आन्ध्र सातवाहन राज्य

नाथू ला व्यापार के लिए खुला
चीन
लड़ाखा
(सिक्किम)
नाथू ला
भारत
अनुमानित द्विपक्षीय व्यापार मात्रा
2010
353
2015
450
2020
574

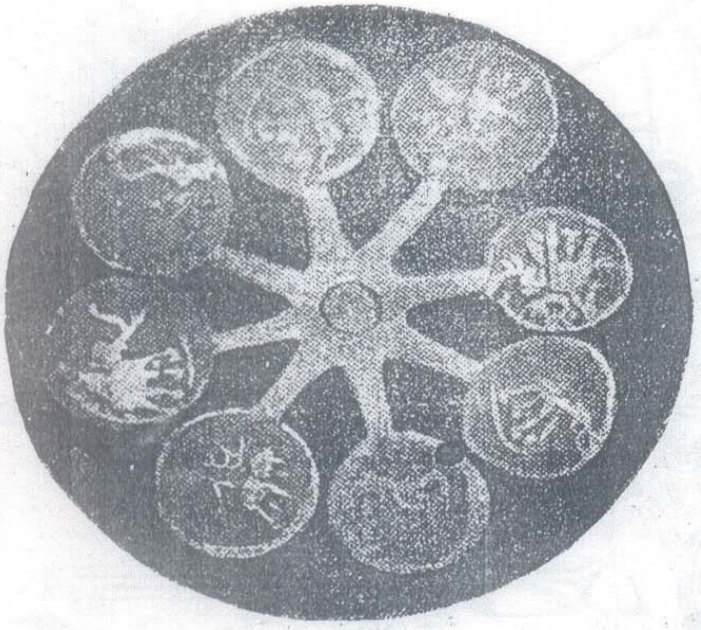

१

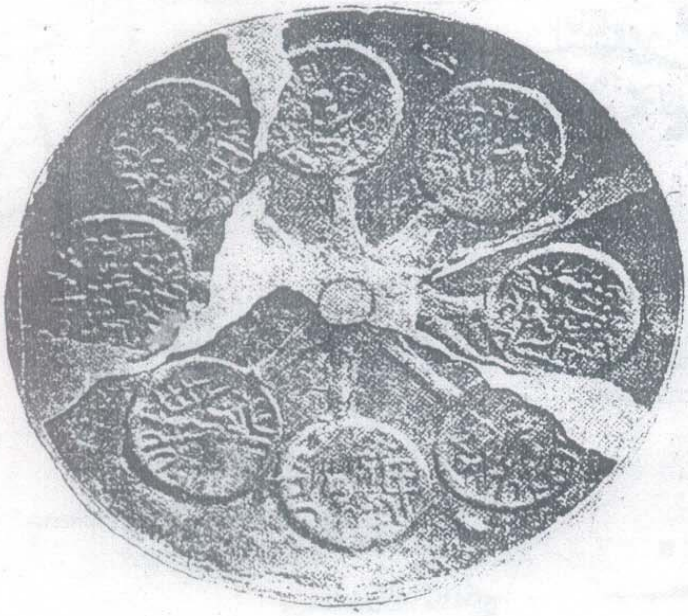

२

मुद्रा निर्माण का साँचा

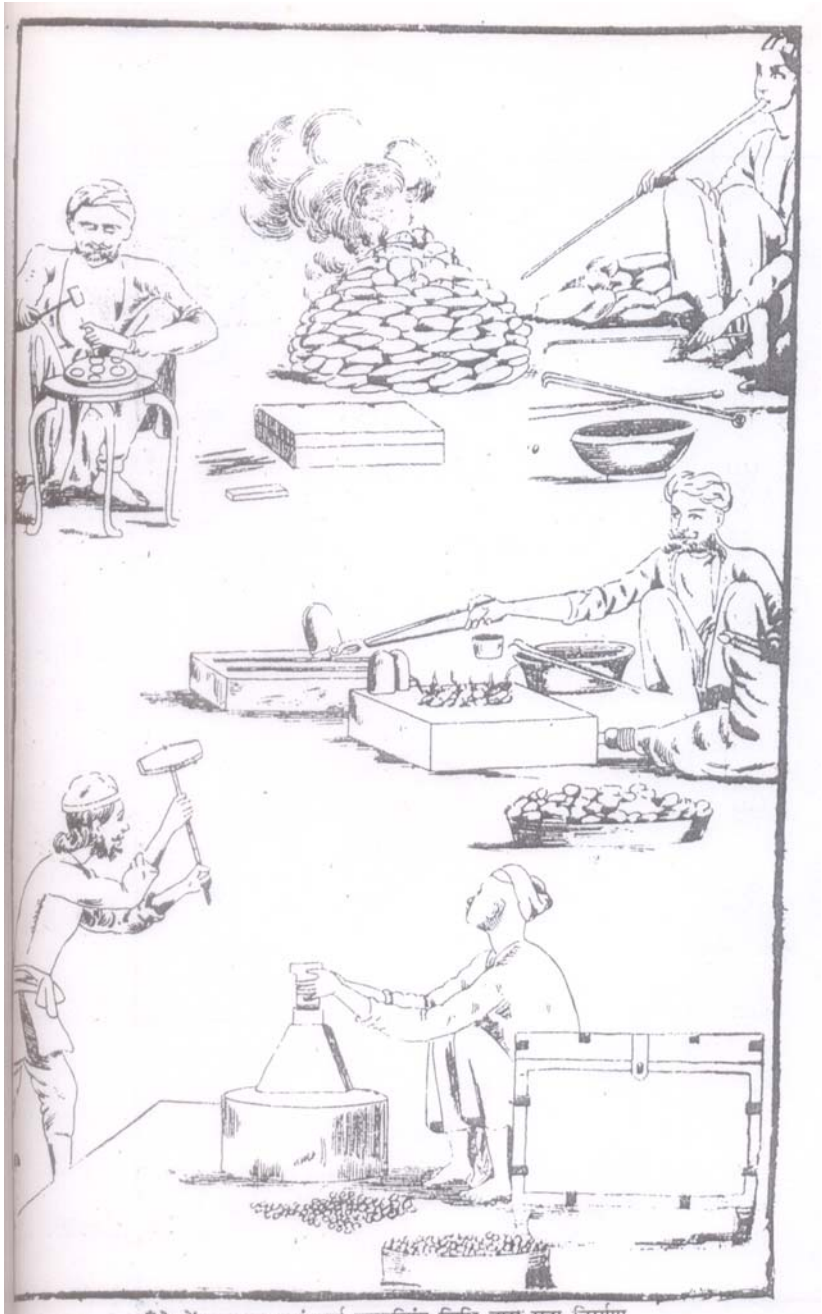

साँचे में ढालकर एवं डाई स्ट्राइकिंग विधि द्वारा मुद्रा निर्माण

फलक - 1

120

विम कैडफाइसेस की मुद्राएं

फलक - 2

12

कनिष्क की मुद्राएं

फलक-3
हुविष्क की मुद्राएँ
वासुदेव की मुद्राएँ
सोटरमेगस उपाधियुक्त मुद्राएँ

मनीषा प्रकाशन की पुस्तकें

महाभारत-संग्रह

प्रस्तुत पुस्तक में महाभारत का विवेचन विभिन्न दृष्टिकोण से किया गया है। इसमें पता चलता है कि स्त्रियों का अपहरण महाभारतकालीन समाज में किस प्रकार होता है और वह किस तरह से उसका विरोध करती हैं। जहाँ एक तरफ स्त्रियों के नाम पर महाभारत में उत्सव मनाए जाते हैं, वही दूसरी तरफ पितृसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्रियों का त्याग किया जाता है। कभी-कभी स्त्रियों के बीच आपसी प्रतिस्पर्धा(Competition)भी दिखाई देती है। यही नहीं महाभारत की स्त्रियों का अपने यौन(Sex)का अधिकार था या नहीं, यह भी भली भाँति दिखाने का प्रयास किया गया है। वस्त्र-विहीन स्त्री-पुरुषों के साथ पुरुषों द्वारा स्त्री चरित्र पर संदेह और विवाहित स्त्रियों के अपमान को भी रेखांकित किया गया है। इसके अतिरिक्त कच-देवयानी के प्रेम प्रसंग की भी चर्चा पुस्तक में की गई है।

अ का मा की भारत में ऐतिहासिक क्रान्ति

अम्बेडकर, कांशीराम और मायावती के नामों के पहले अक्षर को मिलाकर **अ का मा** शब्द को सृजित किया गया है। जिसका तात्पर्य पवित्र विचारों का संघर्ष है। एक ऐसा संघर्ष जो सदियों से दबा हुआ था, उसे मूर्त रुप में प्रस्तुत किया अ का मा ने और यही संघर्ष समय-समय पर क्रान्ति का रुप लेता गया, जो आज अपने तरूण अवस्था में है। प्राचीन काल से जो समुदाय सत्ता की भागीदारी में नेतृत्व पाने से वंचित रहा, वह आज(1995, 1997, 2002, 2007)नेतृत्व की बागडोर सम्हाल रहा है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ज्ञात होता है कि जो नेतृत्व प्राचीन भारत में दिखाई नहीं देता, वह स्वतंत्रोत्तर भारत में दिखाई देता है। यह वह सिद्धान्त है जो प्राचीन भारत से लेकर आधुनिक भारत के(लगभग 1980 ई. तक) इतिहासकारों के लिए एक चुनौती है, जिन्होंने कभी अ का मा के हाथ में नेतृत्व होने की कल्पना भी नहीं की थी। इसलिए अ का मा को ऐतिहासिक क्रांति के रुप में परिभाषित किया गया है। चूँकि इस क्रान्ति का बीज बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने रोपा, मान्यवर कांशीराम साहब जी ने इस क्रान्ति के छोटे से पौधे को सींचा और मायावती जी ने इस क्रान्ति को एकपूर्ण वृक्ष का रुप दे दिया। इसलिए इतिहास की उन महत्वपूर्ण क्रान्तियों में अ का मा की ऐतिहासिक क्रांति भी अपना महत्वपूर्ण और सुरक्षित स्थान रखती है, जिसकी चर्चा पुस्तक में वृहद रुप से किया गया है।

डॉ. मनीषा शुक्ला प्रकाशक,
मनीषा प्रकाशन एवं शोध विवेक संस्था वाराणसी, उ.प्र., भारत